भारतीयविद्या ग्रन्थावलि. ग्रन्थांक ७

सिद्धसेन दिवाकर कृत

वेदवादद्वात्रिंशिका

भावार्थविवेचक

पं० श्री सुखलालजी संघवी

[भूतपूर्व भारतीयदर्शनशास्त्राध्यापक, गुजरातपुरातत्त्व मन्दिर, अहमदाबाद; प्रधान जैनदर्शनाचार्य हिंदु युनिवर्सिटी, बनारस; तथा सम्मान्य दर्शनशास्त्राध्यापक, भारतीय विद्या भवन, मुंबई]

[भारतीय विद्या – भाग ३, 'सिंघी स्मृति ग्रन्थ' मांथी उद्धृत]

प्रकाशक

प्रो० जयन्तकृष्ण ह० दवे, एम्. ए., एलएल. बी.

ऑनररी रजिस्ट्रार

भा र ती य वि द्या भ व न – मुं ब ई

वि. सं. २००१]   मूल्य ०–१२–०   [ई. स. १९४५

भारतीय विद्या ग्रन्थावलि

—प्रकाशित पुस्तक—

*

१ विसुद्धिमग्ग – बुद्धघोषाचार्यकृत पालीभाषामय महाग्रन्थ	मू.
संपादक – अध्यापक श्रीयुत धर्मानन्द कोसंबी	१२–०–०
२ भरतेश्वर बाहुबली रास – गुजराती भाषाग्रथित प्राचीनतम पद्यकृति	
संपादक – आचार्य श्री जिनविजयजी मुनि	०–८–०
३ ज्ञानदीपिका – देवबोधाचार्यकृत महाभारत उद्योगपर्वव्याख्या	
संपादक – डॉ. एस्. के. दे एम्. ए., पीएच्. डी. ढाका युनिवर्सिटी	३–०–०
४ भगवद्गीता भारतीयदर्शनानि च – भगवद्गीतासम्बन्ध विषयक १० संस्कृत व्याख्यान	
व्याख्याता – म० म० श्रीअनन्तकृष्णशास्त्री कलकत्ता युनिवर्सिटी	२–१२–०
५ गुजरातीस्वरव्यंजनप्रक्रिया – प्रो. एल्. टर्नरकृत आंग्ल-भाषानिबन्धानुवाद	
अनुवादक – अध्यापक श्रीयुत केशवराम का. शास्त्री	१–४–०
६ चन्द्रलेखा – रुद्रदास कविकृत सट्टक	
संपादक – डॉ. ए. एन्. उपाध्ये, एम्. ए., पीएच्. डी	६–०–०

प्राप्तिस्थान

भारतीय विद्या भवन

हारवे रोड, मुंबई ७

किंचित् प्रास्ताविक

*

सिद्धसेन दिवाकर जैन संप्रदायमां बहु ज मोटा अने सर्व प्रथम समर्थ दार्शनिक विद्वान् थई गया छे. सांप्रदायिक इतिहास, तेमने अखिल भारतवर्षव्यापी विक्रम संवत्सरना प्रवर्तक, शकारि सम्राट् विक्रमादित्यना समकालीन अने तेना धर्मप्रबोधक आचार्य बतावे छे. एक बहु प्रसिद्ध संस्कृत सुभाषित† जेमां धन्वंतरि, क्षपणक, अमरसिंह अने कालिदासादि नव व्यक्तियोने, विक्रमनी सभाना नव रत्नो तरीके वर्णवामां आवी छे तेमांना 'क्षपणक' ते ए सिद्धसेन दिवाकर छे, एम अनेक विद्वानोनुं प्रामाणिक मन्तव्य छे. ए विक्रम ते कोण अने क्यारे थई गयो तेनो हजी, इतिहास दृष्टिए, सर्वमान्य निर्णय थयो नथी अने तेथी तेना समय साथे सम्बन्ध धरावता आचार्य सिद्धसेन दिवाकरनो समय-निर्णय पण हजी अनिश्चित ज कही शकाय. छतां ते विक्रमना छट्ठा सैकानी समाप्ति पहेलां क्यारेक थई गया छे एटलुं तो निश्चितरूपे कही शकाय तेम छे.

जैन संप्रदायना – खास करीने श्वेताम्बर संप्रदायना पूर्वाचार्योमां तेमनुं स्थान घणुं ऊंचुं अने मोटुं छे. तेओ एक महान् दार्शनिक अने समर्थ शास्त्रकार थई गया छे. कवि तरीकेनी तेमनी प्रतिष्ठा पण घणी मोटी छे. कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्रे पोताना सिद्धहैम व्याकरणमां, एक स्थाने व्याकरण प्रयुक्त उदाहरणमां कह्युं छे के **'अनु सिद्धसेनं कवयः'**– अर्थात् कवियोमां सिद्धसेन श्रेष्ठ छे. बीजे एक स्थळे हेमचन्द्रसूरि, सिद्धसेन सूरिनी स्तुतिरूप काव्यकृतिनी प्रशंसा करतां कहे छे के **'क सिद्धसेनस्तुतयो महार्थाः'** इत्यादि। सिद्धसेननी प्रतिभा आदिनो परिचय आपनार एक विशिष्ट लेख, भारतीय विद्याना प्रस्तुत (३) भागमां ज, अन्यत्र पृष्ठ ९–२० उपर, पण्डितवर्य श्रीसुखलालजीनो प्रकाशित छे, जेना अवलोकनथी, ए सूरिना पाण्डित्य आदिनो सारो परिचय पाठकोने प्राप्त थशे.

ए लेखमां पण्डितजीए, सिद्धसेनाचार्यनी 'वेदवादद्वात्रिंशिका'नो पण थोडोक परिचय आप्यो छे. ए द्वात्रिंशिका खरेखर, समुच्चय संस्कृत साहित्यमां, एक बहु गूढ अने गम्भीर अर्थपूर्ण रचना छे. दार्शनिक अने साहित्यिक विद्वानोने एनो कशो परिचय अद्यापि प्राप्त थयो नथी. एनो भाव पण समजवो बहु कठण छे. जैन अने वेदवादना निगूढ तत्त्वोनो जेमने परिपूर्ण परिचय नथी तेमने प्रस्तुत द्वात्रिंशिकानुं कांई पण रहस्य कळी शके तेम नथी. ए ज कारणथी मने लागे छे के आज सुधी कोई पण जैन विद्वाने, एना उपर कशी टीका-टिप्पणी आदि करी लागती नथी. घणा समयथी मारी इच्छा हती के पण्डितजी ए द्वात्रिंशिकाना अर्थ उपर कांईक प्रकाश पाडे. एमना जेवो जैन दार्शनिक अने साहित्यिक मर्मज्ञ विद्वान् जैन समाजमां अन्य बीजो कोई आजे मारी दृष्टिमां नथी. जैनेतर वर्गमां पण कोई हशे के केम तेनी मने शंका छे. एमना मनमां पण ए द्वात्रिंशिकाना गंभीर अर्थोनुं चर्वण घणा समयथी चाल्यां करतुं हतुं. 'भारतीय विद्या'ना प्रस्तुत भागमां, सिद्धसेनाचार्य विषयक उक्त लेख लख्यां पछी, अने प्रस्तुत भागने, अमारा बन्नेना समान सहायक, स्नेहास्पद अने सहृदय सखा स्वर्गवासी

---

† धन्वन्तरि-क्षपणकामरसिंह-शङ्कु-वेतालभट्ट-घटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेस्सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य॥

बाबू **श्री बहादुरसिंहजी सिंघीना** प्रथम वार्षिक 'स्मृति ग्रंथ' तरीके, प्रकट करवानी मारी कल्पना थयां पछी, आ स्मृति ग्रन्थ माटे ज, पण्डितजीए ए द्वात्रिंशिकाना भावार्थ विषे अत्यारसुधीमां पोते जेटलुं वाचन-चिन्तन-मनन कर्युं हतुं तेना साररूपे प्रस्तुत निबन्ध लखवानो उपक्रम कर्यो अने ते आ स्वरूपे विद्वानोना हाथमां उपस्थित थाय छे. आशा छे के अभ्यासी गण एनो मननपूर्वक विशिष्ट अभ्यास करशे अने पण्डितजीना प्रचुर प्रयासने फलेग्रही बनावशे तथा एमांथी बीजां नवां प्रमेयो शोधी काढवा प्रयत्नवान् थशे.

सिद्धसेन दिवाकरनी बीजी पण आवी अनेक द्वात्रिंशिकाओ छे, जे प्रस्तुत द्वात्रिंशिकानी जेम ज बहु ज गंभीर अने अर्थपूर्ण छे. सांख्य, योग, वैशेषिक आदि अनेक मतोना मन्तव्योनी ए द्वात्रिंशिकाओमां आवी ज रीते निगूढ चर्चा करवामां आवी छे. ए बधी द्वात्रिंशिकाओ उपर पण आ स्वरूपनुं भावार्थबोधक विवेचन थाय तो ते अभ्यासियोने बहु उपयोगी अने केटलाय विशिष्ट प्रमेयोनुं नूतन ज्ञान करावनार थई पडे तेम छे.

हुं इच्छुं छुं के पण्डितजीना हाथे ए अन्यान्य द्वात्रिंशिकाओ उपर पण आवुं समर्पक विवेचन लखाईने निकट भविष्यमां प्रकाश पामे.

सिंघीजीना स्वर्गमननी
प्रथम श्राद्धतिथि
ता. ७-७-४५

– जिन विजय मुनि

सिद्धसेन दिवाकरकृत वेदवादद्वात्रिंशिका

*

विवेचक – पण्डितप्रवर श्रीसुखलालजी संघवी

*

प्रास्ताविक

अहीं जे बत्रीशीनुं विवेचन करवा धार्युं छे ते बत्रीशी तेना नाम प्रमाणे वैदिक परम्पराना तत्त्वज्ञानने लगती छे। सिद्धसेन दिवाकरे जैन परम्परा साथे खास सम्बन्ध धरावनार विषयो उपर जे जे कृतिओ रची छे ते बधी तो तेमणे जैन दीक्षाना स्वीकार पछी ज रची होवानो संभव छे। केम के तेओ जन्मथी अने संस्कारथी ब्राह्मण-परम्पराना होई जैन संघमां दाखल थया पहेलां जैन-परम्पराने लगतुं ऊंडुं अने प्रभावक कृतिनिर्माण करी शके एवुं ज्ञान भाग्ये ज मेळवी शके। परंतु तेमनी जे जे संस्कृत-कृतिओ जैनेतर विषयो उपर के सर्वसामान्य विषयो उपर छे ते तेमणे जैनदीक्षा स्वीकार्या पहेलां पण रची होय एवो संभव छे। ए गमे तेम हो, छतां ब्राह्मण परम्परा प्रमाणे सिद्धसेनने नानी उमरथी ज वेदो, उपनिषदो, गीता अने पुराणोनुं बलवद् अध्ययन अने परिशीलन हतुं, ए वातनी साक्षी तो प्रस्तुत वेदवादद्वात्रिंशिका एकली पण पूरी पाडे छे। सिद्धसेनमां कवित्व अने प्रतिभाना गमे तेवां स्फुट बीजो जन्म-सिद्ध होत पण जो तेमनुं मानस वेद-वेदान्त आदि ब्राह्मण ग्रन्थोना अध्ययन अने परिशीलनजन्य संस्कारोथी उभरातुं न होत तो, तेओ कदी पण वैदिक भाषा, वैदिक छन्द, वैदिक शैली अने वैदिक रूपको तेम ज कल्पनाओ द्वारा वेद तेम ज उपनिषद्गत मान्यता के तत्त्वज्ञानने आ एक ज बत्रीशीमां आटली सफलताथी ग्रथित करी शकत नहीं।

प्रस्तुत बत्रीशीनुं विवेचन कर्या पहेलां ए जणाववुं जरूरी छे के एमां सिद्धसेने सामान्यरूपे कया विषयनुं प्रतिपादन कर्युं छे। जो के बत्रीशी उपर कोई टीका के नामुं पण टिप्पण नथी एटले सिद्धसेननो विवक्षित अर्थ जाणवानुं साधन मात्र मूल बत्रीशी ज छे। परन्तु आ बत्रीशीनी तुलना ज्यारे वेदना मन्त्र, ब्राह्मण अने उपनिषद्भाग साथे तेम ज गीता आदि इतर वैदिक मनाता ग्रन्थो साथे करीए छीए, त्यारे एनो सामान्य भाव शो छे ए जणाया विना रहेतुं नथी।

प्रस्तुत बत्रीशीनुं हार्द समजवा खातर उपर सूचवेल ग्रन्थो साथे तेनी पुनः पुनः तुलना अने विचारणा करवा जतां मारा मन उपर एकंदर एवी छाप पडी छे के सिद्ध-सेने प्रस्तुत बत्रीशीमां मुख्यपणे सांख्य-योगना तत्त्वज्ञाननो उपयोग करी ब्रह्म अथवा औपनिषद* पुरुषनुं वर्णन कर्युं छे। प्रस्तुत बत्रीशीनुं प्रत्येक पद, प्रत्येक पाद के तद्गत

---

* ब्रह्म शब्दना अनेक अर्थोनी पेठे पुरुष शब्दना पण अनेक अर्थो छे। तेमांथी श्वेता-श्वतरमां प्रयुक्त 'त्रिविधं ब्रह्ममेतत्' (१.१२) ए पद ध्यानमां लेवा जेवुं छे। प्रधानात्मक भोग्य ब्रह्म, जीवात्मरूप भोक्तृ ब्रह्म अने ईश्वररूप प्रेरक ब्रह्म – ए त्रिविध ब्रह्म छे। अने ए ज त्रिविध ब्रह्म ते गीता (१५.१६,१७)ना क्षर पुरुष, अक्षर पुरुष अने पुरुषोत्तम ए त्रिविध पुरुष छे. तेमांथी जे पुरुषोत्तमरूप अंतिम ब्रह्म छे, जेने सेश्वर सांख्यमां पुरुष-

३.१.३०.

प्रत्येक विचार जोतां एम लागे छे के सिद्धसेनना कविमानसमां कोई एक ज वैदिक ग्रन्थ रममाण नथी, तेम छतां ए पण देखाय छे के तत्त्वज्ञानने लगतां जे प्राचीन उपनिषदो छे अने मन्त्र-ब्राह्मणमां तत्त्वज्ञानने लगतां जे प्रसिद्ध सूक्तो छे ते बधामांथी श्वेताश्वतर उपनिषद्नो प्रभाव कवि मानस उपर वधारे प्रमाणमां पडेलो छे। ए खरुं छे के श्वेताश्वतर उपनिषद् मात्र पाशुपत सम्प्रदायने अनुसरी रचाएल छे ज्यारे प्रस्तुत बत्रीशी मात्र पाशुपत सम्प्रदायमां बद्ध न रहेतां पौराणिक त्रिमूर्तिवादनो पण आश्रय ले छे।

सांख्यना विकासनी भूमिकाओ।

आम आ बत्रीशीमां औपनिषद पुरुषनुं सांख्य-योग तत्त्वज्ञाननी प्रक्रिया अने परिभाषा द्वारा पौराणिक त्रिमूर्तिरूपे वर्णन थएलुं होवाथी बत्रीशी अने तेनुं विवेचन सरलताथी समजी शकाय एटला माटे प्रास्ताविकरूपे सांख्य-योग तत्त्वज्ञाननुं विशिष्ट स्वरूप तेना विकासक्रम प्रमाणे अत्रे दर्शाववुं आवश्यक छे।

सांख्य परम्पराना प्रवाहने लगतां विचारना जुदां जुदां वळणोनो सुनिश्चित कालक्रम दर्शाववो ए काम गमे तेने वास्ते पण शक्य नथी। तेम छतां मानवबुद्धिना विकासनी भूमिकाओना विचारने धोरणे अने जुदा जुदा साहित्यिक पुरावाओ उपरथी बंधाती कल्पनाने आधारे आपणे ते परम्पराना तत्त्वज्ञाननी भूमिकाओनुं पौर्वापर्य ठीक ठीक विचारी शकीए छीए। एना विशाल अर्थमां सांख्य परम्परा बीजी कोई पण भारतीय तत्त्वज्ञाननी परंपरा करतां वधारे प्राचीन अने व्यापक छे। प्राचीनता तो एटला उपरथी पण सिद्ध छे के तेना जेटला स्तरो प्राचीन भारतीय वाङ्मयमां मळे छे तेटला स्तरो बीजी एके परम्पराना मळतां नथी। तेनी व्यापकतानो ख्याल तो एटला उपरथी ज आवी शके तेम छे के वेद, उपनिषद्, महाभारत, गीता, पुराण, वैद्यक, काव्य-नाटक आदि संस्कृत वाङ्मय तथा संत साहित्य अने जैन-बौद्ध परम्पराना प्राचीन ग्रन्थो ए बधामां एक अथवा बीजारूपे ओछा वधता प्रमाणमां सांख्य परिभाषा अने सांख्य तत्त्वज्ञान नजरे पड्या विना रहेतां नथी। एटलुं ज नहीं पण प्राचीन औपनिषद चिंतन के दर्शन अने बौद्धदर्शननी भूमिका तेम ज वैष्णव-शैव आदि आगमावलम्बी परम्पराओ अने उत्तरकालीन वेदान्तनी बधी ज परम्पराओनी मूळ भूमिका सांख्य परिभाषा, सांख्य प्रक्रिया अने सांख्य विचारथी ज घडाएली छे।

एम लागे छे के सांख्यविचारनो प्रथम स्तर भौतिक जगत् अथवा प्रकृतिना स्थूल-भागने अवलम्बी घडायो हतो, जे एक अथवा बीजारूपे चार्वाकने नामे अगर भौतिकवादने नामे आज लगी साहित्यमां सचवाई रह्यो छे। आ स्तरमां प्रकृतिनुं

विशेष कहेल छे तेनुं ज बत्रीशीमां मुख्यपणे वर्णन छे, आ वस्तु ३१मा पद्यना 'तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्' ए पादथी स्पष्ट सूचित थाय छे। ए ज पुरुष औपनिषद छे। उपनिषद् काळना समग्र चिंतनना परिणामरूपे जे एक स्वतन्त्र चेतन तत्त्व सिद्ध थयुं छे ते ज औप-निषद पुरुष छे। ए तत्त्वने औपनिषद विशेषण बृहदारण्यक (३.९.२६)मां आपेल छे ते एम सूचवे छे के उपनिषद्ना चिंतन पहेला एवुं चेतन तत्त्व सुनिश्चितरूपे सिद्ध थयुं न हतुं अने आ तत्त्वनी मान्यता उपनिषद्ने ज आभारी छे।

किंवा सूक्ष्म के अव्यक्त रूपमां खास थयुं लागतुं नथी पण ते पृथ्वी, जल आदि स्थूल अने व्यक्तरूपने अवलंबीने ज चालतुं। पुरुष के आत्मानी कल्पना ए स्तरमां विनश्वर स्थूल भूतोना मिश्रणजन्य एक प्रकारथी आगळ वधेली न हती। बीजो स्तर ए स्थूल-भूतना कारण विषेना चिंतनमांथी जन्म्यो होय तेम लागे छे। स्थूल अने व्यक्त देखातां तत्त्वोनुं कारण शुं? एनुं कांइक कारण तो होवुं ज जोइए—ए प्रश्नना उत्तररूपे सूक्ष्म भौतिक तत्त्वनी कल्पना अव्यक्त-प्रकृतिरूपे स्थिर थई अने ए कल्पना साथे ज पुरुषनो अर्थ स्थूल अने क्षर भौतिक परिणाममां बद्ध न रहेतां ते अव्यक्त-प्रकृति सुधी विस्तर्यो अने जे व्यक्त जगतनुं अव्यक्त के अदृश्य कारण छे ते ज पुरुष तरीके मनायुं। व्यक्त के स्थूल भौतिक जगत क्षर, चर या विनश्वर छे तो शुं तेनुं कारण अव्यक्त पण तेवुं ज मानवुं? जो ते पण तेवुं ज क्षर होय तो तेनुं मूळ कारण पाछुं बीजुं मानवुं पडे अने एम तो अन्त आवे नहीं। ए विचारमांथी व्यक्त अने क्षर जगतना कारण तरीके मनाएलुं अव्यक्त तत्त्व अक्षर, नित्य, अविनश्वर कल्पायुं। अने एज पुरुष के आत्मा वा जीव तत्त्व छे एवी समजमांथी पुरुषतत्त्व पण क्षरमांथी अक्षर बन्युं। लो० तिलक करे छे ते व्याख्या मान्य [1]राखीए तो उपर सूचवेल क्षरपुरुषवाद अने अक्षर-पुरुषवाद ए बन्ने स्तरो गीतामां 'क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते' एमां सूचवाएल छे। अव्यक्त-प्रकृति ए ज अन्तिम तत्त्व पुरुष छे ने तेथी आगळ बीजुं कशुं नथी एवी २४ तत्त्ववाळी सांख्य तत्त्वज्ञाननी बीजी भूमिका महाभारतमां त्यार बादनी २५ अने २६ तत्त्ववाळी बे भूमिकाओनी पेठे वर्णवाएली मळे छे[2]। परंतु आ २४ तत्त्ववाळी भूमिकानुं सांख्यदर्शन तेना खरा भावमां तो चरक नामक आयुर्वेदग्रन्थमां विस्तृत वर्णवाएलुं[3] छे। तेमां अव्यक्त-प्रकृतिने ज आत्मा, पुरुष, चेतन, परमात्मा, कर्ता, भोक्ता, ब्रह्म, आदिरूपे वर्णवेल छे, अने तेने ज आश्रयी पुनर्जन्म घटावी निरात्मवादनुं निरसन करवामां आव्युं छे। आ निरात्मवाद ते पहेली स्थूल अने क्षर भूतराशिविशेषने पुरुष माननार भूमिका। बीजी भूमिकामां अविनश्वर प्रकृति तत्त्व दाखल थतां ज तेमां पुनर्जन्म प्रक्रिया घटाववामां आवी अने ते साथे ज पहेली भूमिकाना क्षरपुरुषवादने नास्तिक कही निंदवामां आव्यो छे। ए कहेवानी तो भाग्ये ज

---

१ मारो अभिप्राय एवो छे के लो० तिलके करेल व्याख्या बराबर नथी. 'कूटस्थोऽक्षर उच्यते' एमां कूटस्थ अक्षररूपे सांख्यसंमत जीवात्मा ज लेवो जोइए, नहि के प्रकृति. केम के प्रकृति कूटस्थ मनाती नथी, अने पुरुष ज कूटस्थ मनाय छे। प्रकृतिनो समावेश 'क्षरः सर्वाणि भूतानि' ए क्षरभागमां थाय छे, केम के ते अक्षर छतां कार्यरूपे क्षर पण छे. आवो अर्थ करतां गीताना प्रस्तुत (१५.१६,१७) त्रिविध पुरुषवर्णनमां सेश्वर सांख्यनी चारेय भूमिकाओ समाई जाय छे. ज्यारे तिलकनी व्याख्या मानवा जतां जीवात्मानो संग्रह ते वर्णनमां रही जाय छे. गीताकार प्रकृतिनो तो संग्रह करे, अने जीवात्माने छोडी दे एम बने नहि.

२ *History of Indian philosophy* p. 217. महाभारत शांतिपर्व अध्याय ३१८।

३ शारीरस्थानम्। प्रथम अध्याय।

जरूर रहे छे के व्यक्त क्षर तत्त्वमय पुरुष अने अव्यक्त अक्षर प्रकृतिमय पुरुषनी बन्ने मान्यताओ वखते पुरुष के आत्मामां अनुभवाता ज्ञान, सुख-दुःख आदि गुणो व्यक्त क्षरतत्त्वना तेम ज अव्यक्त-प्रकृति तत्त्वना ज छे एम मनातुं, अने आ मान्यता पण सांख्य विचारनो आगळ गमे तेटलो विकास थयो छतां ते तेना तत्त्वज्ञानमां स्पष्टरूपे सचवाएली मळे छे । सांख्य तत्त्वज्ञाने ज्यारे प्रकृतिथी पृथक् अने स्वतन्त्र पुरुषनुं अस्तित्व स्वीकार्युं त्यारे पण ते पोतानी जूनी ए मान्यताने तो वळगी ज रह्युं के ज्ञान, सुख-दुःख, धर्माधर्म आदि गुणो के धर्मो ए पुरुषना गुणो नथी पण ते तो अव्यक्त के प्रकृतिना कार्य प्रपञ्चमां ज आवी जाय छे। केम के ते प्राकृत अन्तःकरणना ज धर्मो छे । अप्राकृत चेतनवादनी भूमिकाने अवलम्बी विचार करनार दर्शनो पैकी जैन अने न्याय-वैशेषिक दर्शने ज्ञान, सुख-दुःख, धर्म-अधर्म आदि गुणोने प्राकृत भूमिकाथी बहार आणी अप्राकृत स्वतन्त्र चेतन तत्त्वमां स्थान आप्युं, तेम छतां पण अप्राकृत चेतनवादनी भूमिकाने स्पर्शी विचार करनार सांख्यदर्शने तो ते गुणोने प्राकृत ज मान्या अने अप्राकृत चेतनमां तेना अस्तित्वनो सर्वथा निषेध कर्यो । आ मौलिक मतभेदनुं बीज मारी कल्पना प्रमाणे सांख्य तत्त्वज्ञाननी उपर वर्णवेली व्यक्त तत्त्वमय अने अव्यक्त प्रकृतिमय पुरुषनी बे क्रमिक भूमिकाओमां समाएलुं छे। केम के जो जैन, न्याय-वैशेषिक आदि दर्शननी पेठे सांख्य दर्शनमां अप्राकृत आत्मतत्त्वनी भूमिका पहेली ज होत तो तेमां पण ज्ञान, सुख-दुःखादि ए आत्माना ज मनात अने ते रीते ज प्राकृतभागथी अप्राकृत आत्मानुं विलक्षणत्व बताववामां आवत; अने ते गुणोने प्राकृत अन्तःकरणना मानवानी जरूर रहेत ज नहीं ।

अव्यक्त प्रकृति ए ज पुरुष के चेतन छे एम मनावा लाग्युं त्यार बाद ते भूमिका सामे पण प्रश्न थवा लाग्यो के भले व्यक्त करतां अव्यक्तनुं स्थान ऊँचुं होय पण छेवटे तो ते पण व्यक्तनुं कारण होवाथी व्यक्तकोटिनुं एटले भौतिक अने जड ज छे । अने जो तेम होय तो पुरुष, आत्मा के चेतन पण भौतिक के जड ज सिद्ध थाय । एटले ए जड आत्मामां चैतन्य क्यांथी संभवे ? अने जो अव्यक्त प्रकृतिमां चैतन्यनो संभव मानवामां आवे तो तेना प्रपञ्चरूप व्यक्तभूतोमां पण चैतन्य मानवुं पडे । अने जो एम स्वीकारवामां आवे तो अन्ते भौतिक चेतनवाद ज फलित थाय । तेवी स्थितिमां अव्यक्त प्रकृतिमय पुरुषनी कल्पना नकामी केम न गणाय ? आवा प्रश्नना खुलासानी विचारणामांथी स्वतन्त्र चेतनवादनी नवी भूमिका सांख्य तत्त्वज्ञानमां आवी होय तेम लागे छे । हवे तो सांख्य विचारकोए अव्यक्त प्रकृतिथी आगळ वधी एक बीजुं तत्त्व स्वीकार्युं, जे मनायुं तो प्रकृतिनी पेठे अव्यक्त, पण ते तेना करता चढिआतुं अने विलक्षण कल्पायुं । ते तत्त्व एटले स्वतन्त्र अने प्रकृतिथी पृथक् एवुं चेतन तत्त्व । आ सांख्य तत्त्वज्ञाननी त्रीजी भूमिका छे, जे आज लगी सांख्यदर्शन अने तदनुसारी बीजां बधा दर्शनोमां प्रधानपदे रही छे । आ भूमिकामां एम कल्पायुं छे के चेतना ए प्रकृति के तेना व्यक्त कार्योमां होई शके नहीं । ते बधां तो जड अने भौतिक कोटिनां छे। चैतन्य ए तेनी बहारनी वस्तु छे । अने ते जे तत्त्वमां होय ते ज चेतन, पुरुष अने आत्मा साची रीते होई शके । अव्यक्त प्रकृति अने तेनां व्यक्त कार्यो गमे तेटलां क्रियाशील

अने परिणामजनक होय, छतां ए बधाने तटस्थ अने अलिप्तभावे मूंगी प्रेरणा आपनार चेतन तत्त्व ए तो साव स्वतन्त्र अने जुदुं ज छे। अने ते ज तत्त्व वास्तविक रीते पुरुष के आत्मा नामने पात्र छे। आ रीते क्यारेक व्यक्त क्यारेक अव्यक्त-प्रकृति अने क्यारेक तेथी पर चेतन तत्त्व, एम त्रणे भूमिकाओमां पुरुषनी कल्पना उत्तरोत्तर आगळ वधती गई। सांख्य तत्त्वज्ञाने ज्यारे अव्यक्त-प्रकृतिनी कल्पना करी हती त्यारे तेणे तेने परिणमनशील छतां अज—अजन्मा अनादि के नित्य मान्युं हतुं। पण हवे ज्यारे तेणे पुरुष तत्त्व साव जुदुं स्वीकार्युं त्यारे तेने केवुं मानवुं, ए प्रश्न उद्भव्यो अने तेना उत्तररूपे एम मनायुं के स्वतन्त्र चेतन तत्त्व ए मात्र प्रकृतिना जेवुं अजन्मा अनादि के नित्य ज नथी पण ते तो कूटस्थ सुद्धां छे। एटले जेम ते उत्पन्न थतुं नथी तेम तेनामांथी कोई आविर्भाव पण थतो नथी। प्रकृति नित्य छतां प्रसवशील होवाथी अजा छे। ज्यारे स्वतन्त्र कल्पाएल चेतन प्रसवधर्मा नहीं पण तटस्थपणे प्रकृतिना प्रसवनुं निमित्त के तेना प्रसवनो साक्षी होवाथी ते साचा अर्थमां पुरुष—प्रेरक अने अज पण छे। ज्यारे आ त्रीजी भूमिकामां स्वतन्त्र पुरुष तत्त्वनी कल्पना थई त्यारे मानसिक भूमिका प्रमाणे प्रत्येक देहे प्रत्येक जुदो पुरुष एवो पुरुषबहुत्ववाद ज हतो। ते वखते अद्वैत के एक पुरुषनी कल्पना अवतरी ज न हती।

बीजी बाजु अनेक टोळाओमां वहेंचाएल मनुष्य जातिमां पोतपोताना वर्तुलने माफक आवे एवी तरेह तरेहना देवदेवीओनी पौराणिक अने लौकिक कल्पनाओए ऊंडा मूळ नाख्यां हतां। कोई पण तत्त्वज्ञ सहेलाइथी ए देवदेवीओनुं स्थान नाबूद करी शके तेम न हतुं। एटले तत्त्वज्ञोने पण पोताना चिंतनक्षेत्रमां ए देवदेवीओनुं स्थान गोठव्या विना चाले तेम न हतुं। दरेक टोळी पोताना ज इष्ट अने मान्य देव के देवीने करता-धरता मानती। जे टोळी प्रभावशाळी बने तेनो इष्ट देव पण तेटलो ज प्रभावशाळी बनतो। आ उथलपाथलनी क्रिया लांबा वखतथी चालती हती, अने तेथी तत्त्वज्ञनी मूंझवण एक रीते वधती जती। तत्त्वज्ञ ते वखते एम कहेवानुं तो साहस करी शके तेम हतुं ज नहीं के कोई करता-धरता छे ज नहीं। पण तत्त्वज्ञनी प्रतिभामां एक तत्त्व प्रकाशित थवानो अवसर पाकी गयो हतो। तेथी कोई अप्रतिम प्रतिभा अने साहसवाळा चिंतके विचार प्रकट कर्यो के अनेक देव अने देवीओ होय तो ते परिमित शक्तिवाळा ज होइ शके जेवा के तेना अनुयायीओ। अने जे सर्व नियामक, सर्व शक्तिमान् न होय ते खरो के महान् देव तो न ज होई शके। एटले सर्वनुं नियंत्रण करनार एवो एक ज महान् देव के देवाधिप छे के जेना नियमन प्रमाणे आखुं विश्वचक्र चाले छे। आ महेश्वरनी कल्पना सांख्यतत्त्वज्ञाने जाते ऊभी करी होय के पछी बीजा पासेथी तेणे स्वीकारी होय पण ते सांख्य तत्त्वज्ञाननी खास चोथी अने छेल्ली भूमिका बनी रही। ईश्वर तरीके जे तत्त्व स्वीकारायुं ते चेतनरूप ज होय ए तो स्वाभाविक हतुं। पण बीजा चेतनो करतां ईश्वर चेतननी विशेषता स्वीकारवामां न आवे तो तेवी मान्यतानो कशो अर्थ ज न रहे। एटले सांख्य चिंतकोए ईश्वरने चेतन मान्या छतां तेनुं स्थान बीजा चेतनो करतां चढिआतुं कल्प्युं। बीजा चेतनो कूटस्थ छतां प्रकृतिना पाशनी असर तळे आवे अने क्यारेक ए असरथी छूटे पण खरा; परन्तु ईश्वर चेतन तो

कदी ए पाशनो स्पर्श अनुभवे ज नहीं अने तेथी एने ए पाशथी छूटवापणुं पण न होय। आ विशिष्ट पुरुष के ईश्वर ते ज गीतामां[1] वर्णवाएला पुरुषोत्तम अने परब्रह्म अने ते ज योगसूत्रमां[2] प्रतिपादित पुरुषविशेष। आ रीते सांख्यतत्त्वज्ञाननी चार भूमिकाओ फलित थई। (१) व्यक्त क्षर पुरुष (२) अव्यक्त प्रकृत्यात्मक पुरुष (३) प्रकृतिभिन्न स्वतन्त्र पुरुष (४) स्वतन्त्र पुरुषोमां पण मूर्धन्य एवो एक पुरुषोत्तम ईश्वर, महेश्वर, शिव के पशुपति।

जेमां विशिष्ट पुरुषरूपे ईश्वरनी मान्यता स्थिर थई ते उपर वर्णवेल सांख्य तत्त्वज्ञाननी चोथी भूमिका। ए ज भूमिका सांख्य-योग दर्शन तरीके पहेलेथी आज लगी दार्शनिक साहित्यमां सुविदित छे। निरीश्वर सांख्यदर्शन परस्पर भिन्न एवां प्रकृति अने पुरुष सहित पचीस तत्त्व स्वीकारे छे। ज्यारे सेश्वर मनातुं सांख्य-योगदर्शन एमां ईश्वरतत्त्वनो उमेरो करी छव्वीस तत्त्व स्वीकारे छे। सिद्धसेने आ ज सांख्य-योगदर्शननी भूमिकाने अवलम्बी ते उपर कवित्वना कलामय छांटणां छांटी प्रस्तुत कृति रची छे। ए सत्य छे के सिद्धसेने प्रस्तुत बत्रीशीमां चोवीस, पचीस के छव्वीसमांथी एकेय तत्त्वसंख्यानो निर्देश कर्यो नथी। तेम छतां ए पण एटलुं ज सत्य छे के सांख्य-योगना छव्वीस तत्त्वोनुं संक्षेपमां जे चार विभागमां वर्गीकरण थाय छे ते चार विभाग प्रस्तुत बत्रीशीमां एक अथवा बीजी रीते गर्भित थएला होई स्पष्टपणे सूचित थाय छे। आ चार विभाग ते (१) व्यक्त-क्षर या दृश्य चराचर भौतिक विश्व, (२) अव्यक्त-अक्षर भौतिक मूल कारण सर्वान्तिम सूक्ष्मद्रव्य या प्रकृति (३) कूटस्थ-अपरिणामी नित्य एवं निर्गुण चेतन पुरुषो (४) प्रथमथी ज सदा क्लेशकर्मादि बन्धननी असर विनानो एवो एक ईश्वर या विशिष्ट पुरुष।

वेदना विचारोनी जूनी-नवी व्याख्याओ

आज लगीना अध्ययन चिंतनने परिणामे जे एक बाबत मारा ध्यान उपर सविशेष आवी छे तेनो निर्देश अहीं करवो योग्य छे। जेथी बीजा अभ्यासीओ ते उपर विचार करी शके अने ते मुद्दाने परीक्षक दृष्टिए कसी जुवे। अत्यारे लगभग बधा ज तत्त्वचिंतको उपलब्ध व्याख्याओने आधारे ऋग्वेदना तत्त्वविषयक केटलांक सूक्तो अने तेवां ज अन्य वेदनां सूक्तो तथा अति प्राचीन कही शकाय एवां उपनिषदोमांना भागोने परब्रह्मपरक समजे छे अने ते प्रमाणे ज अर्थ करे छे। एटले के बधा ज चिंतको अने व्याख्याकारो चोवीस तत्त्ववाला सांख्य दर्शननी भूमिका पछीनी अव्यक्तथी भिन्न एवा चेतन अने परब्रह्म माननारी भूमिकाने अवलंबीने ज ते ते सूक्तो अने उपनिषदोनो अर्थ घटावे छे। परंतु मने लागे छे के जो ते ते भागो अति प्राचीन होय तो तेमां परब्रह्मनुं वर्णन नथी, पण चोवीस तत्त्ववाली भूमिकामां अंतिम तत्त्वतरीके स्वीकाराएल अने ते वखते अत्यन्त प्रतिष्ठा पामेल एवा मूळ कारणरूप अव्यक्तनुं ज अनेक रीते

१. "उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥" गीता १५.१७।

२ योगसूत्र १,२४।

वर्णन छे। ऋग्वेदमां सत् रूपे, हिरण्यगर्भरूपे, पुरुषरूपे के अनिर्वचनीयरूपे ए ज अव्यक्तनो महिमा गावामां आव्यो छे, अने उपनिषदोना प्राचीन स्तरोमां पण असत्, सत्, ब्रह्म के पुरुषरूपे ए ज अव्यक्त गवाएलुं छे। आम छतां व्याख्याकारो अने भाष्यकारो ए बधां स्थळोमां परब्रह्म एवो अर्थ करे छे तेनुं शुं कारण? एवो प्रश्न थशे। मारो उत्तर ए छे के ते बधी उपलब्ध व्याख्याओ अने भाष्यो लखायां त्यारे परब्रह्मनी प्रतिष्ठा तद्दन सुस्थापित थई गई हती। एटले व्याख्याकारो अने भाष्यकारोनो अध्ययन तेम ज चिंतन संस्कार एक मात्र परब्रह्मलक्षी हतो। ते वखते इतिहास अने क्रमविकासनी दृष्टिए व्याख्या लखवानी प्रथा ज न हती। एटले व्याख्या अने भाष्यकारोए प्रामाणिकपणे ज पोताने प्राप्त थएल संस्कार प्रमाणे ते ते स्थळोनी व्याख्या करी। अव्यक्त-प्रकृतिपरक वाक्योनो परब्रह्मपरक अर्थ करवामां भूल थवानुं खास कारण ए पण हतुं के शरूआतमां अव्यक्तने अंतिम तत्त्व तरीके प्रतिष्ठा आपवाना समयमां तेने जे जे अक्षर, स्वयंभू, आत्मा, परमात्मा, चेतन, विभु, ब्रह्म आदि विशेषणो अपातां ते ज विशेषणो अव्यक्तथी भिन्न मनाएल चेतन के ईश्वरने पण अपाता हतां। एटले परब्रह्मनी मान्यताना युगमां थएला व्याख्याकारो अव्यक्तनी मान्यताना युगवाळा वर्णनोने परब्रह्मपरक वर्णवे ए तद्दन स्वाभाविक हतुं। परब्रह्म अगर चेतनतत्त्वना स्वीकारवाळी छव्वीस अगर पच्चीस तत्त्व माननारी भूमिकाओ प्रथम प्रतिष्ठा पामी हती, अने अव्यक्तने अंतिम तत्त्व माननार चोवीस तत्त्वनी भूमिका त्यार बाद भारतीयदर्शनोमां आवी एम नहीं कही शकाय। आगळ जतां जेने अनात्मवाद के जडवाद तरीके वर्णववामां आवेल छे ते चोवीस तत्त्वनी भूमिका प्रथमनी ज छे ए विषे संदेह रहे तेवुं छे ज नहीं। शुं महाभारतमां के शुं गीतामां[1] ए भूमिकाना अवशेषो जुदा तरी आवे छे अने मूल चरकमां तो एनो स्पष्टपणे स्वीकार छे। तेम छतां बन्युं छे एम के पाछला व्याख्याकारोए मूल चरकना ए प्राचीन भागने पोताना संस्कार प्रमाणे ज भिन्न आत्मतत्त्वपरक मानी लीधो छे अने ते प्रमाणे व्याख्या करी छे। तेथी मूल अने व्याख्या वच्चे घणी असंगतिओ पण देखाय छे। पृथक् चेतन अने परब्रह्मनी मान्यताना युगमां रचाएल के संकलित थएल उपनिषदो, महाभारत के गीता आदिमां ए अव्यक्त प्रकृतिने ज अंतिम तत्त्व माननार भूमिकानो एक मतान्तर तरीके के पूर्वपक्ष तरीके उल्लेख थएलो छे। जेम आगळ जतां केवलाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत के शुद्धाद्वैतना साम्प्रदायिक विचारो प्रकट थवा लाग्या त्यारे ते ते पुरस्कर्ताओए प्राचीन उपनिषदो अने गीता आदिनुं पोतानी ज दृष्टिए ऐकान्तिक व्याख्यान कर्युं, अने ए ग्रन्थोमां बीजा कया कया विरोधी मन्तव्यो स्पष्ट छे एनो विचार ज न कर्यो;

---

१ दा० त० गीता २.२८ 'अव्यक्तादीनि भूतानि' आ विचार अव्यक्त-प्रकृतिने ज चरम तत्त्व माननार भूमिकानो छे, नहिं के पृथक् चेतन माननार भूमिकानो। ए ज रीते छांदोग्यनो 'असदेवेदमग्र आसीत् तत् सदासीत् तत् समभवत्' ३.१९.१ इत्यादि भाग प्रकृतिचेतनाभेदवादनी सांख्य तत्त्वज्ञाननी भूमिकानो सूचक छे, नहिं के अतिरिक्त ब्रह्मवादनी मान्यतानी भूमिकानो सूचक। ज्यारे 'तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीत्' ६.२.१ इत्यादि छान्दोग्यनो भाग अतिरिक्त ब्रह्मवादनी मान्यतानी भूमिकानो सूचक छे.

तेम परब्रह्म के पृथक् चेतनतत्त्वनी स्थापना अने प्रतिष्ठा थया पछीना व्याख्याकारोए प्राचीन गमे ते भागने एक मात्र परब्रह्म के पृथक् चेतनपरक मानी लीधा। हुं एम मानुं छुं के ऋग्वेद अने उपनिषदोमांना केटलाक भागो वगेरेमां बहु ज प्राचीन तत्त्व-चिंतन समाएलुं छे के जे वखते पृथक् चेतन अने परब्रह्मनी कल्पना उद्‌भवमां आवी न हती। आ दृष्टिए ते ते प्राचीन भागो उपर विचार करतां विचारकोने मूळ अने पाछळनी व्याख्या वच्चे यत्र तत्र देखाती असंगतिओ नहीं जणाय एम हुं मानुं छुं।

प्राचीन उपनिषदो अने गीतामां अद्वैत-परब्रह्मगामी चिंतननुं स्पष्ट वळण छे ज। पण अथेति ते उपनिषदो अने गीतामांथी मध्वाचार्यना ऐकान्तिक द्वैत मतने फलित करवो ए जेटले अंशे खेंचताणनी अपेक्षा राखे छे तेटले ज अंशे तेमांथी अथेति शंकराचार्यना मायावाद के केवलाद्वैतने फलित करवानुं काम पण खेंचताणवाळुं लागे छे। आ मुद्दो प्राचीन उपनिषदो अने गीताने मूल उपरथी वांचता तरत नजरे चडे तेवो छे। तेथी ज तत्त्वचिंतक श्री नर्मदाशङ्कर महेता उपनिषद्विचारणामां अने सर राधाकृष्णन जेवा पण 'इण्डियन फिलोसोफी'मां ए वातनी साक्षी पूरे छे। प्राचीन उपनिषदो अने गीताना घणा भागो विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत अने शुद्धाद्वैतनी तरफेणमां जाय एवा छे। परंतु श्वेताश्वतर स्पष्टपणे द्वैतवादी छे केम के तेमां प्रकृति, पुरुष अने महेश्वर ए त्रिविध ब्रह्मने स्पष्टपणे स्वीकारेल छे। अने ए ज ईश्वर, महेश्वर के परमपुरुषनी पशुपतिरूपे वर्णना के स्तुति करवामां आवी छे।

सिद्धसेननी व्याख्यानुं वळण

सिद्धसेन श्वेताश्वतरनुं उपजीवन मुख्यपणे करता होय तेम लागे छे, छतां श्वेताश्वतर करतां सिद्धसेननी स्तुतिमां अद्वैत या समन्वयनी छांट कांइक वधारे छे। जो के ते पण प्रकृति, पुरुष अने परमपुरुष एम त्रणेने स्वीकारता लागे छे। बे वच्चेना आ अन्तरनुं कारण ए लागे छे के एक तो सिद्धसेनना समय सुधीमां अनेक जातना अद्वैत मतो स्थिर थई गया हता अने बीजुं कारण ए पण होय के सिद्धसेन मात्र पाशुपत सम्प्रदायमां बद्ध न रहेतां उपनिषदो, गीता अने पुराणोनी समन्वय पद्धतिने ज अनुसर्या होय।

सिद्धसेनना वर्णननी एक खास विशेषता तरफ वाचकोनुं ध्यान प्रथम ज खेंचवुं आवश्यक छे। ते ए छे के पुरुष तत्त्वनी अव्यक्तथी जुदी कल्पना थया बाद कोई पाका संसारानुभवी रसिक अने तत्त्वज्ञ एवा प्रतिभासम्पन्न कविए पचीस तत्त्ववाळा सांख्यनी भूमिकामां अव्यक्त अने पुरुष जुदां जुदां कल्पायां पछी मूळ कारण अव्यक्तने प्रकृति अने कूटस्थ चेतनतत्त्वने पुरुष नाम आप्युं अने जीवसृष्टिना उत्पादक बे विजातीय (स्त्री-पुरुष) तत्त्वोना युगलनुं रूपक लई चराचर जगतना उत्पादक बे विजातीय तत्त्वो मानी तेना युगलने प्रकृति-पुरुषरूपे वर्णव्यां। ज्यारे श्वेताश्वतर ऋषिए ए प्रकृति-पुरुष स्वरूप बे तत्त्वोनुं विजातीयत्व कायम राखी तेना युगलने 'अजा' अने 'अजन्मा' रूपकमां वर्णव्या। तेणे खूबी ए करी छे के संततिनी जन्म अने संवर्धन-क्रियामां अनुभवसिद्ध पुरुषना तटस्थपणानी छाया, सांख्य विचार-सरणि प्रमाणे चेतन

तत्त्वमां हती तेने, अने मातृसुलभ संपूर्ण जनन-संवर्धननी जवाबदारी अने चिंतानी छाया प्रकृतिमां हती तेने अनुक्रमे 'अज' अने 'अजा'ना रूपकमां वर्णवी। ज्यारे सिद्धसेने बत्रीशीमां केवळ 'अजनो' ज उल्लेख कर्यो छे अने 'अजा'नो उल्लेख छोडी दीधो छे। एटलुं ज नहीं पण तेमणे ऋग्वेद अने शुक्लयजुर्वेद तेम ज मनुस्मृति आदिनी पेठे गर्भना आधान स्थानना निर्देश कर्या विना ज अज – ईश्वर या चेतन – ने गर्भना जनक तरीके वर्णव्यो छे।

कई पद्धतिए बत्रीशीनो अर्थ करवो ए एक समस्या हती। पण हाल तुरत में एनो जे उकेल कर्यो छे तेनुं सूचन अत्रे करवुं योग्य छे, जेथी अभ्यासी अगर बीजा व्याख्याकारोने तेथी कांइक आगळ जवानुं सूझे अने रही गएल त्रुटिओ क्रमे दूर थाय। मारी व्याख्यान पद्धति मुख्यपणे त्रण भागमां वहेंचाई जाय छे – (१) बत्रीशीगत पद, वाक्य, पाद, पूरेपूरुं पद्य, रूपक, कल्पना आदि वेद, उपनिषदो अने गीतामांथी जेवांने तेवां के थोडा फेरफारवाळां मळयां तेनो संग्रह करी अर्थ अने विवेचनमां उपयोग करवो। (२) ते ते संगृहीत भागोनो मूळ उपरथी के टीकाओ उपरथी जे अर्थ थतो होय अने जे वधारे योग्य लागतो होय तेनो प्रस्तुत विवेचनमां उपयोग करवो। (३) वेद आदि प्राचीन ग्रन्थोमांथी एकत्र करेल तुलनात्मक भागो अने तेनो अर्थ ए बन्नेनो विवेचनमां यथासंभव सरखामणीमां उपयोग करवा छतां ज्यां बंधबेसतुं न लाग्युं होय त्यां स्वाधीन बुद्धिथी अर्थ अने विवेचन करवां।

प्रस्तुत बत्रीशी बीजी बत्रीशीओ साथे जैनधर्म प्रसारक सभा तरफथी 'श्रीसिद्धसेन दिवाकरकृत ग्रन्थमाला'मां वि० सं० १९६५मां प्रसिद्ध थयेली छे। में एना संपादक आचार्य श्री सागरानंदसूरिने पूछ्युं तो मालूम पड्युं के ताडपत्रनी जूनी प्रतने आधारे ते संपादन थयुं छे। आ जूनी प्रत क्यांनी हती ते तेमने याद नथी। पण संभवतः ते प्रति भांडारकर इन्स्टीट्यूटमां छे ते ज होवी जोईये। आ प्रति साथे मुद्रित प्रतिनुं मिलान आचार्य श्री जिनविजयजीए घणा वर्ष अगाउ करेलुं अने पाठांतर लीधेला। ए नकल आजे मारी सामे छे. भारतीय विद्याना प्रस्तुत अंकमां ज अन्यत्र प्रस्तुत बत्रीशी मुद्रित थई छे (पृ० १८–२०) तेमां में प्रसारक सभावाळी आवृत्तिनो मुद्रित पाठ ज मुख्य राख्यो छे अने मारी सूचनाओ कोष्ठकमां राखी छे। परंतु आ स्थळे मूळमां ज मारी धारणावाळो पाठ सळंग छापेलो छे अने मुद्रितनो पाठभेद अहिं नीचे टिप्पणीमां आप्यो छे। में जे जे पाठ मारी दृष्टिए कल्प्या छे ते अंतिम ज छे एम खात्रीथी कही न शकाय, पण भाषा, अर्थ, छंद, अन्य ग्रन्थोमां मळी आवेल समान भागो आदिने आधारे मने जे जे पाठ सुधारवा ठीक लाग्या ते में सुधार्या छे, तेम छतां बे-एक स्थळ एवां छे के जेनी सुधारणा विषे मने अंतिम संतोष नथी, जो के ए स्थळो वास्ते में अनेक प्राचीन वैदिक ग्रन्थो उथलाव्या छे।

*

३.१.३१.

सिद्धसेन दिवाकरकृत

वेदवाद द्वात्रिंशिका।

*

अजः पतंगः शबलो विश्वमयो धत्ते गर्भमचरं चरं च।
योऽस्याध्यक्षमकलं सर्वधान्यं वेदातीतं वेदवेद्यं स वेद ॥ १ ॥

अर्थ—पतंग, शबल अने विश्वमय एवो अज (चेतन या सगुण ब्रह्म) अचर तेमज चर एवा गर्भनुं आधान करे छे। आना—गर्भ या तेना आधायकना अध्यक्ष—नियामक (निर्गुण ब्रह्म), अकल, सर्वना बीज तेमज वेदथी अतीत अने छतां वेद्य छे तेने जे जाणे छे ते ज जाणे छे।

भावार्थ—अहीं सांख्य-योगनी भेददृष्टिए विचारतां अजरूपे जीवात्मा अने अध्यक्षरूपे परमेश्वर लई शकाय, तेम ज वेदान्तनी अभेददृष्टिए विचारतां अजरूपे सगुणब्रह्म अने अध्यक्षरूपे निर्गुणब्रह्म लई शकाय। गमे ते दृष्टिए अर्थ करतां एटलुं तत्त्व तो समान ज छे के चराचर विश्वनुं धारण, पोषण अने संवर्धन चेतनतत्त्वने आभारी छे। तेथी चराचर विश्वने अजना गर्भ तरीके कविए वर्णव्युं छे। चराचरभूतरूप हेमाण्डमां ब्रह्मदेव प्रकट थया अने ते ब्रह्मदेव ब्रह्मजन्य छे, आवुं महाभारतनुं वर्णन सामे राखी अहीं एवो पण अर्थ करी शकाय के अज पोते चराचर गर्भमां अवतरे छे एटले के ब्रह्मरूप अकल निर्गुणतत्त्वथी अजरूप ब्रह्मदेवनो चराचर विश्वमां जन्म थाय छे।

अजने पतंग कहेल छे, केम के ते सूर्यनी पेठे प्रकाशमान् छे। तेने शबल अने विश्वमय विशेषण आपी एम सूचव्युं छे के ज्यारे चेतनतत्त्व प्राकृत गुणोना प्रभावथी के मायाना स्फुरणथी चित्ररूप बने छे अने नाना रूपनुं सर्जन करवा अभिमुख बने छे, त्यारे ज ते चराचर प्राकृतिक सृष्टिनुं जनक बने छे अथवा ए सृष्टिमां प्रकट थाय छे।

सेश्वरसांख्यनी के वेदान्तनी दृष्टिए भोक्ता अने भोग्य बन्नेनुं कोई नियामक तत्त्व होवुं ज जोईए एवो सिद्धान्त छे। तेथी ए नियामक तत्त्वने ज कविए भोग्य विश्व अने भोक्ता पुरुषना अध्यक्ष तरीके वर्णवेल छे। कवि वर्णवे छे के अध्यक्ष परमात्मा अकल एटले प्रकृति तत्त्वनां क्लेशकर्मादि के प्राण आदि कलाना स्पर्शथी सर्वथा मुक्त छतां ते सर्व भोग्यभोक्तृवर्गनुं बीज छे। केम के जे कांई छे ते सर्वनुं बीज परमात्मा छे। परमात्मा ज सर्वनुं निधान छे। परमात्माने चिंतकोए वाणी

अने मनथी अगोचर वर्णवेलो होई कवि पण तेने वेदातीत कहे छे। वेदोमां तेवा परमात्मानुं वर्णन न होय तेथी पण वेदातीत कहेवाय। मन्त्रोनो पाठ मात्र थतो अने अर्थचिंतन नहीं एवो कौत्सनो मत मानीए तो पण परमात्मा वेदातीत कहेवाय, अने वेद वर्णन करे तोय ते छेवटे शब्दात्मक होवाथी संपूर्णपणे परमात्मानुं वर्णन करी न शके ए दृष्टिए पण ते वेदातीत कहेवाय। कविनुं कहेवुं एम छे के परमात्मा शब्दगम्य नथी छतां ते ज्ञेय तो छे ज। एटले जे एवा परमात्माने ध्यान के स्वानुभवथी जाणे छे ते ज जाणे छे।

सेश्वर सांख्य अने अद्वैत वेदान्तनी दृष्टिए उपर अर्थ घटाववामां आव्यो छे तेवी ज रीते जैनदृष्टिए पण प्रस्तुत पद्यनो अर्थ बराबर घटे छे। केम के जैनदृष्टि प्रत्येक चेतननी बे अवस्था स्वीकारे छे। तात्त्विकपणे–निश्चय दृष्टिए ते आत्माने अध्यक्ष–साक्षीरूप कर्तृत्व-भोक्तृत्वनी कलाथी विहीन अने शब्दागम्य माने छे। ज्यारे व्यावहारिक दृष्टिए ते आत्माने कर्मना सम्बन्धथी शबल तेम ज नानारूपधारी माने छे। अद्वैत परब्रह्म अने जीवभेद ए बेना सम्बन्धनो जे खुलासो वेदान्त करे छे ते ज खुलासो जैनदृष्टिए प्रत्येक स्वतन्त्र चेतनना तात्त्विक अने व्यावहारिक स्वरूपना सम्बन्ध विषे छे।

ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १६४ ना मन्त्र २० मां जाणे सेश्वर सांख्यनुं बीज होय तेवी रीते एक ज वृक्ष उपर रहेल बे पंखीओनुं विश्वमां रहेल जीवात्मा अने परमात्मा साथे रूपक करी वर्णन करवामां आव्युं छे। बे समान स्वभावनां सहचारी मित्र जेवां पंखीओ एक ज वृक्षने आश्रित रहेलां छे। तेमांथी एक–जीवात्मा स्वादु फल (कर्मफल)ने चाखे छे, ज्यारे बीजुं पंखी–परमात्मा एवुं फल चाख्या सिवाय ज प्रकाशे छे। आ पछीना ज बे आगला मन्त्रोमां पण वृक्ष अने पंखीओनुं रूपक विस्तारी सहेज भंगीभेदथी पुनः जीवात्माओनुं वर्णन करेलुं छे। आ रूपक एटलुं बधुं सचोट अने आकर्षक छे के ते रचायाने हजारो वर्ष वीती गयां, छतां ते चिंतको अने सामान्य लोकोना विचारप्रदेशमांथी खसवाने बदले तत्त्वज्ञानना विकासनी साथे अर्थथी विकसतुं गयुं। अथर्ववेदना काण्ड ९ सूक्त ९ मां ए ज ऋग्वेदना त्रण मन्त्रो छे। ज्यारे मुण्डक उपनिषद मुं० ३ खं० १ मां बे पक्षीना रूपकनो मन्त्र तो ए ज छे, पण त्यार बाद बीजा मन्त्रमां एम कहेवामां आव्युं छे के वृक्ष एक ज छतां तेमां लुब्ध थएलो पुरुष दीनताने लीधे मोह पामतो

१ निरुक्त १. ५।

हर्ष-विषाद अनुभवे छे। पण ते लुब्ध पुरुष ज्यारे ते ज वृक्ष उपर रहेल बीजा समर्थ – अलुब्ध अने निर्मोह पुरुषनुं दर्शन करे छे त्यारे ते पोते पण निर्मोह बने छे। एक ज वृक्षने आश्रित बे पक्षीओना रूपक द्वारा ऋग्वेद के अथर्ववेदमां जे अर्थ विवक्षित हतो तेने ज मुण्डककारे बीजा मन्त्रमां स्पष्ट कर्यो लागे छे। केम के ते कहे छे के जे पुरुष वृक्षमां लुब्ध छे ते मोहथी दुःखी थाय छे; अने बीजो पुरुष समर्थ होई तेमां लुब्ध नथी, तेथी लुब्धने अलुब्धना स्वरूपनुं दर्शन थतां ज ते पण निर्मोह बने छे। श्वेताश्वतरे (अ० ४) मुण्डकना ए बे मन्त्रो लई जीवात्मा अने परमात्माना स्वरूपनुं तेम ज पारस्परिक सम्बन्धनुं वर्णन तो कर्युं ज छे,[1] पण वधारामां तेणे एक नवुं आकर्षक रूपक योजी बद्ध अने मुक्त एवा बे पुरुषोनुं वर्णन कर्युं छे। तेणे अज – बकरानुं रूपक करी कह्युं छे के एक अज – बद्ध जीव भोगाभिमुख प्रकृतिरूप अजा उपर प्रीति करतो होई दुःख पामे छे, ज्यारे बीजो अज – मुक्त जीव भोगपराङ्मुख अजाने त्यजी दे छे। आ रीते ऋग्वेदथी श्वेताश्वतर सुधीना रूपको द्वारा थएलुं वर्णन एटलुं सूचवे छे के प्रकृति, बद्धपुरुष, मुक्तपुरुष अने परमात्मा ए चार तत्त्वो विचारप्रदेशमां स्थिर थई गयां छे के जे सेश्वरसांख्य या सांख्ययोगनी भूमिकारूप छे।

सिद्धसेने प्रस्तुत पद्यमां ए ज वस्तु जूना रूपको छोडी सहेज फेरफार साथे बीजी रीते वर्णवी छे। ते बद्ध अने मुक्त बे पुरुषोमांथी मात्र बद्ध पुरुषनुं ज एक अजरूपे वर्णन करे छे अने मुक्त पुरुषनुं अजरूपक तथा परमात्मानुं पक्षीरूपक छोडी दई परमात्माने सृष्टि अने जीवात्माना अध्यक्ष तरीके "योऽस्याध्यक्षं अकलं सर्वधान्यं वेदातीतं वेदवेद्यं स वेद।' एम कही वर्णवे छे। एमना ए कथनमां ऋग्वेदमांना नासदीयसूक्तगत मन्त्र ७ मांना 'योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद' आ पदोनो रणकार गूंजे छे।

सिद्धसेन पछी लगभग हजारेक वर्षे थएला आनंदघन नामक जैन संते हिंदी भाषामां ए वैदिक अने औपनिषद रूपकने बहु खूबीथी वर्णव्युं छे। ते कहे छे,[1] के एक वृक्ष उपर बे पंखी बेठेलां छे। तेमां एक गुरु अने बीजुं चेलो छे। चेलो फळ चूंटीचूंटीने खाय छे, पण गुरु तो सदा मस्त होई सदा आत्मतुष्ट छे। आनंदघने आ रूपक द्वारा जैन परम्परासम्मत बद्ध अने मुक्त जीवनुं वर्णन कर्युं

१ तरुवर एक पंछी दोउ बेठे, एक गुरु एक चेला।
चेलेने जग चुण चुण खाया, गुरु निरंतर खेला॥ पद० ९८।

छे, जे सांख्यपरम्परासम्मत बद्ध अने मुक्त बे अजना वर्णन जेवुं ज छे अथवा वैदिक रूपक प्रमाणे जीवात्मा अने परमात्माना वर्णन जेवुं ज छे। गीतामां 'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्' (९.१०) ए पद्यमां परमात्मारूपे कृष्णने अध्यक्ष कही चराचर सृष्टिने जन्म आपनार तरीके स्त्रीलिंग प्रकृतिनो निर्देश छे। स्त्री ज गर्भ धारण करे छे अने पुरुष तो मात्र निमित्त छे—एवा व्यावहारिक अनुभवने सांख्य-परम्परा अनुसार यथावत् व्यक्त करवा गीताकारे स्त्रीलिङ्ग-प्रकृतिनो प्रसव करनार तरीके निर्देश कर्यो छे अने श्वेताश्वतरे ए ज प्रकृतिनुं स्त्रीलिङ्गी अजा—बकरी रूपे रूपक कर्युं छे (अध्याय ४). त्यारे सिद्धसेन तो चराचर गर्भना धारक तरीके पुरुष अजनुं वर्णन करे छे, ए देखीतो विरोध छे। आनो परिहार बे रीते संभवे छे एक तो ए के सिद्धसेन 'गर्भं धत्ते' ए शब्दद्वारा गर्भनुं आधान करनार पुरुषनुं ज वर्णन करे छे, नहीं के तेने धारण करनार स्त्रीनुं। बीजुं सिद्धसेननो आशय कदाच आवा विरोधाभासी वर्णन द्वारा सांख्य-परम्पराथी जुदा पडी एम सूचववानो होय के सांख्यो प्रकृतिने कर्ता अने पुरुषने अकर्ता छतां भोक्ता माने छे; पण वस्तुतः कर्ता अने भोक्ता जुदा जुदा न होय। तेथी पुरुषने ज भोक्तानी जेम कर्ता मानवो घटे, भले ते कर्तृत्वमां अन्य तत्त्वनो सहकार ले। पुरुषमां सर्वथा अकर्तृत्व माननार सांख्यपरम्परानी विरुद्ध न्याय-वैशेषिक, जैन आदि घणी परम्पराओ छे। एटलुं ज नहीं पण वेदान्तनी दरेक शाखा ब्रह्मनुं ज कर्तृत्व स्थापी सांख्यसम्मत प्रकृतिना कर्तृत्वने साव गौण करी दे छे। ए ज भाव सिद्धसेन कहेवा मांगता होय तेवो पण संभव छे। केम के आगळना पद्योमां पण घणे स्थळे सिद्धसेने सांख्यनी प्राचीन प्रणालिकाओथी जुदी रीते पण वर्णन कर्युं छे।

अज शब्दनो रूढ अर्थ छे बकरो अने यौगिक अर्थ छे अजन्मा। एम लागे छे के अतिप्राचीन समयमां बकराओना टोळाओथी अतिपरिचित अने तेनी वच्चे रहेनार ऋषिकविओए रूपक तरीके अजनो प्रयोग कर्यो हशे। पण धीरे धीरे ते उपमेय देव, आत्मा, परमात्मा आदिमां वपरावा लाग्यो अने त्यारे तेनो अर्थ अजन्मा एवो यौगिक करवामां आव्यो, जे उपनिषदो अने गीता आदिमां सर्वत्र 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः' (२. २०) इत्यादि उक्तिमां देखाय छे।

प्रस्तुत पद्यनुं पूर्वार्ध वांचतां श्वेताश्वतरनुं 'नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्षः' (४. ४) इत्यादि पादनुं स्मरण थाय छे।

स एवैतद्विश्वमधितिष्ठत्येकस्तमेवैतं विश्वमधितिष्ठत्येकम् ।
स एवैतद्वेद यदिहास्ति वेद्यं तमेवैतद्वेद यदिहास्ति वेद्यम् ॥ २ ॥

अर्थ—ते ज एक—परमात्मा आ विश्वनुं अधिष्ठान करे छे। आ एक विश्व तेनुं—परमात्मानुं अधिष्ठान करे छे। ते ज—परमात्मा अहीं जे कांई वेद्य छे तेने जाणे छे। अहीं जे वेद्य छे ते तेने—परमात्माने ज जाणे छे।

भावार्थ—आ पद्यमां चराचर विश्व अने परमात्मा ए बन्नेना परस्पर अधिष्ठातृत्वनुं वर्णन छे, जे वैदिक, औपनिषद अने गीता आदिना वर्णनथी जुदुं पडे छे। केम के 'तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा' ए ऋग्वेद (१.१.६४.१३) मां तथा 'यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः' (१.३) 'यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येकः' (४. ११) इत्यादि श्वेताश्वतरमां अने गीतामां "प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया" (गी० ४.६) मात्र परमात्माने ज विश्वना अधिष्ठान तरीके वर्णवेल छे, नहीं के विश्वने पण परमात्माना अधिष्ठान तरीके। प्राचीन शैलीथी विरुद्ध देखाती शैली अवलंबवा पाछळ सिद्धसेननुं दृष्टिबिंदु ए लागे छे के जे बे तत्त्वो अनन्द्र छे, तेमांथी एकने ज बीजानो आधार केम कही शकाय? जो एक बीजानुं आधार मनाय तो बीजुं पहेलानुं आधार केम न मनाय? तेथी बन्नेने एक बीजाना आधार मानवा ए ज युक्त छे। वळी अगम्य अने अमेय तत्त्वोनुं वर्णन जो शक्य होय तो ते वधारे सारी रीते विरोधाभास द्वारा ज थई शके। एवी विरोधाभास शैलीनो आश्रय वैदिक ऋषिओथी मांडी ठेठ सुधीना बधा ज तत्त्वज्ञ कविओए लीधो छे।

तेथी ज सिद्धसेन परमात्मा अने विश्व बन्नेने परस्परना ज्ञाता अने ज्ञेयरूपे वर्णवे छे। परमेश्वर विश्वने जाणे छे ए खरुं पण विश्व के जे ज्ञेय मनाय छे अने जेमां जीवात्मानो पण समावेश थाय छे ते परमात्माने न जाणे तो बीजुं कोण जाणे। तेथी ज गीतामां अर्जुन—जीवात्मा कृष्ण—परमात्माने कहे छे के ज्ञाता पण तुं छे अने ज्ञेय एवुं अंतिम धाम पण तुं ज छे—गीता ११-३८।

स एवैतद्भुवनं सृजति विश्वरूपः
तमेवैतत्सृजति भुवनं विश्वरूपम्।
न चैवैनं सृजति कश्चिन्नित्यजातम्
न चासौ सृजति भुवनं नित्यजातम् ॥ ३ ॥

अर्थ—ते ज नानारूप परमात्मा आ विश्वने सरजे छे अने आ ज नानारूप विश्व तेने—परमात्माने सरजे छे। वळी ए नित्यजात परमात्माने कोई सरजतुं नथी अने आ परमात्मा नित्यजात भुवनने सरजतो नथी।

भावार्थ – आ पद्यमां नानारूप भुवन अने परमात्माने एक बीजाना सर्जकरूपे वर्णव्या छे। अने वळी भुवन तेम ज परमात्माने नित्यजात सदोत्पन्न कही कोई कोईने सरजतुं नथी एम पण कह्युं छे। आ देखीता विरोधनो परिहार दृष्टिभेदथी थई जाय छे। जैनपरम्परामां द्रव्यार्थिक अने पर्यायार्थिक ए बे दृष्टिओ प्रसिद्ध छे अने ते सर्व तत्त्वने लागू पडे छे। ते अनुसार एम कही शकाय के चेतन के अचेतन दरेक तत्त्व पोताना मूळस्वरूपे शाश्वत अने अनुत्पन्न होई तेमांथी कोई एक बीजाने सरजतुं ज नथी। ज्यारे ते ज दरेक तत्त्व स्वस्वरूपे नित्य छतां अवस्थाभेद अनुभवे छे, अने ते अवस्थाभेद परस्परना संयोगने आभारी होवाथी बन्ने चेतन अचेतन तत्त्व एक बीजानुं सर्जन पण करे छे।

सांख्य-योग के वेदान्तनी दृष्टिए पण कविनुं वर्णन असंगत नथी। परमेश्वर नानारूप विश्वने सरजे छे ए मन्तव्य तो 'अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्' ए श्वेताश्वतरनी उक्तिमां स्पष्ट[1] छे। "अने प्रभु लोकनुं कर्तृत्व आदि कशुं सरजतो नथी, स्वभाव ज स्वयमेव प्रवर्ते छे" ए गीतावचनमां[2] परमात्मानुं असर्जकपणुं पण स्पष्ट छे। वळी नानारूप विश्व परमेश्वरने आभारी होवाथी जेम ते तेनो सर्जक कहेवाय तेम परमेश्वरना नानारूपो पण प्राकृत के मायिक नानारूप विश्वने आभारी होवाथी विश्वने पण तेनुं सर्जक कही शकाय। अने मात्र प्रकृति ज नहीं पण चेतन परमात्मा सुद्धां नित्यजात—सदातन होवाथी बन्नेमांथी कोई अन्यने सरजतुं नथी एम कही शकाय। सर्जन-असर्जन ए बधुं आपेक्षिक किंवा मायिक छे एम कही कवि छेवटे तो तत्त्वनी अगम्यता ज सूचवे छे।

एकायनशतात्मानमेकं विश्वात्मानममृतं जायमानम्।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति यस्तं[3] वै वेद किमृचा करिष्यति ॥ ४ ॥

अर्थ – एक आश्रयरूप अने शतात्मरूप तथा एक अने विश्वात्मरूप तेम ज अमृत अने जन्म लेनार एवा तेने—परमात्माने जे नथी जाणतो ते ऋचाथी शुं करवानो हतो अने जे ते परमात्माने जाणे छे ते पण ऋचाथी शुं करवानो छे!

भावार्थ – आ पद्यमां परमात्माना परस्परविरुद्ध एवां अनेक स्वरूपद्वंद्वो वर्णव्यां छे। कवि परमात्माने एकायन कही सर्वना एकमात्र आधार तरीके वर्णवे छे,

---

१ श्वेताश्वतर ४.९

२ न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ गीता ५.१४

३ यस्तं न वेद–मु०

ज्यारे साथे ज तेने शतात्मां कही अनेक आधाररूपे पण सूचवे छे। ते परमात्माने एक कहे छे अने वळी नानारूप कहे छे। फरी ते परमात्माने अमर कहे छे अने वळी जन्म लेनार पण कहे छे। आ कथनो विरुद्ध जेवां देखाय छे, पण वस्तुतः ते सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मानी अलौकिकता ज सूचवे छे। आवां वर्णनो शुं वेदो, शुं उपनिषदो के शुं गीता ज्यां देखो त्यां सर्वत्र मळे छे। कविए पण तेनुं अनुसरण कर्युं छे।

परंतु कविनी प्रतिभानी खरी खूबी तो आ पद्यना उत्तरार्धमां व्यक्त थाय छे। श्वेताश्वतर "ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः। यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते।" (श्वेता० ४.८) आ पद्य द्वारा ऋचाओनी महत्ता अने उपयोगिता स्वीकारीने एटलुं ज कहे छे के परमात्माने जे नथी जाणतो तेने वास्ते ऋचाओ – वेदो नकामा छे अने जे परमात्माने जाणे छे ते शान्त समाहित बने छे। परन्तु सिद्धसेन श्वेताश्वतरथी तार्किक दृष्टिए आगळ वधी तर्कसुलभ बन्ने विकल्पोने अवलम्बी ऋग्मंत्रोनुं निरर्थकत्व सूचवे छे। तेनुं वक्तव्य ए छे के श्रद्धाळु लोको ऋचाओ अने वेदोने सर्वस्व मानी तेनो पाठ करे छे अने तेनी आसपास चकरावो मारे छे। पण जो खरा ज्ञेय एवा परमात्माने जाण्यो न होय तो वेदमंत्रो शा कामना? एवो पाठ तो पोपट पण करे। अने जो परमात्मानुं ज्ञान थयुं तो पछी वेदमन्त्रोनो सार मळी ज गयो, एटले पण ते नकामा ज छे। श्वेताश्वतर परमात्माना ज्ञानना अभावमां ज वेदपाठना महत्त्वनो इनकार करे छे। ज्यारे सिद्धसेन परमात्माना अज्ञान अने ज्ञान बन्नेमां वेदपाठना महत्त्वनो इनकार करे छे।

सर्वद्वारा निभृता[1] मृत्युपाशैः स्वयंप्रभानेकसहस्रपर्वाः।
यस्यां वेदाः शेरते यज्ञगर्भाः सैषा गुहा गूहते सर्वमेतत्॥ ५॥

अर्थ – जेनी अन्दर यज्ञलक्षी वेदो शयन करे छे एवी मृत्युपाशथी व्यापेली सर्वद्वारवाळी, स्वयंप्रकाशवाळी, अनेक हजार पर्वोवाळी एवी आ गुहा आ सर्वने ढांके छे।

भावार्थ – आ पद्यमां कविए गुहारूपे अविद्या के मायानुं वर्णन करेलुं लागे छे। सांख्य अने औपनिषद परम्परा प्रमाणे प्रकृति, बुद्धि, अविद्या के माया ए ज सर्व प्रपञ्चने आवरे छे; केम के आखुं जगत ए मूळ कारणथी ज अवराएलुं छे। तेथी ते सर्व जगतने लीन थवानुं स्थान होई गुहा तुल्य छे।

१ निभृतमृ° मु०

सांख्य अने वेदान्तनी दृष्टिए आत्मज्ञान ए ज मुख्य पुरुषार्थ छे अने यज्ञ-यागादि कर्मो ते भवहेतु होवाथी अविद्यारूप छे । अने तेथी ज यज्ञ-यागादिमां उपयोगी वेदो ते पण अविद्यानी कोटिमां पडता होई कविए वेदोने अविद्यामां शयन करनार कह्या छे ।

कविए अविद्याने जे रीते वर्णवी छे ते तेनुं लौकिक गुहाथी विलक्षणत्व सूचवे छे । पर्वतमांनी गुफाने एक अने बहु तो बे द्वार होय छे, ज्यारे अविद्याने सर्व बाजुए द्वार ज छे । पर्वतीय गुफा भयथी रक्षण आपे छे अगर ध्याननुं स्थान होई मृत्युने निवारे छे, ज्यारे अविद्या मृत्युना अनेक पाशोथी व्याप्त छे । तेमां रक्षण के अमृतत्व जेवुं कशुं ज नथी । पर्वतीय गुफा अन्धकारमय होई दीपादि प्रकाशनी अपेक्षा राखे छे, ज्यारे अविद्या सत्त्वगुणने लीधे स्वयंप्रकाश होई सौने आंजी नाखे छे । पर्वतीय गुफामां गमे तेटला खण्डो के भागो होय छतां ते परिमित ज होवाना, ज्यारे अविद्यामां हजारो अने लाखो पर्वो – ग्रन्थिओ होय छे जेमांथी वासना अने रागद्वेष आदिनी अनेक शाखा प्रशाखाओ फूटे छे । पर्वतीय गुफा गण्या गांठ्याने ज आवरे छे, ज्यारे अविद्या तो समग्र विश्वने आवरे छे । केम के आखा जगतनुं प्रभव अने प्रलय स्थान ए ज छे । पर्वतीय गुफामां वेदोनुं स्थान ज नथी, ज्यारे यज्ञसमर्थक बधा ज वेदो वासनापोषक होई अंते अविद्यामां ज पर्यवसान पामे छे ।

भावोऽभा(भ?)वो निःस्वतत्त्वः [सतत्त्वो]
निरंजनो [रञ्जनो] यः प्रकारः ।
गुणात्मको निर्गुणो निष्प्रभावो
विश्वेश्वरः सर्वमयो न सर्वः ॥ ६ ॥

अर्थ – जे प्रकार भावरूप छे अने अभावरूप छे, स्वतत्त्वरहित छे अने सतत्त्व छे, निरञ्जन छे अने रञ्जन छे, गुणात्मक छे अने निर्गुण छे, प्रभावरहित छे अने विश्वनो ईश्वर – प्रभु छे, सर्वमय छे अने सर्व नथी ।

भावार्थ – उपनिषदोमां "तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके । तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।" (ईशा० ५), "अणोरणीयान्महतो महीयान् ।" (कठ० १ अ० २ व० २० श्लो०) इत्यादि जेम परमात्मानुं विरोधाभासी वर्णन छे अने जेम गीतामां "सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् । असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥" (१३.१४) इत्यादि विरोधाभासी वर्णन छे तेम कविए अहीं

1 भावाभावो निःस्वतत्त्वो (वितत्त्वो) निरंजनो (रंजनो) यः प्रकारः – मु० । ३.१.३२.

परमात्माने एक अलौकिक प्रकारे सूचववा विरोधाभासी वर्णन कर्युं छे, जे अपेक्षा अने दृष्टिभेदथी घटमान छे । भावरूप एटला माटे के ते एक पारमार्थिक तत्त्व छे, अभावरूप एटला माटे के ते सर्व सांसारिकभावोथी पर छे, निःस्वतत्त्व एटला माटे के तेनुं स्वतत्त्व सर्वगम्य नथी अने छतांय ते वस्तुतः स्वरूप धरावे छे । ते मळथी मुक्त होई निरञ्जन छे अने छतांय ते तत्त्वज्ञो अने ध्यानीओनुं रञ्जन पण करे छे । ते सर्व स्वाभाविक गुणोनी मूर्ति छे पण प्राकृत गुणोथी रहित छे । ते भयप्रद प्रभावथी मुक्त छे अने तेथी ज विश्वनो प्रभु छे । ते सर्वव्यापी होई सर्वमय छे अने छतांय ते एक ज होवाथी बहुत्वगर्भित सर्व नथी ।

स्रष्टा सृष्ट्वा स्वयमेवोपभुंक्ते सर्वश्चायं भूतसर्गो यतश्च ।
न चास्याम्यत्कारणं सर्गसिद्धौ न चात्मानं सृजते नापि चान्यान् ॥७॥

अर्थ – जेनाथी आ सर्वभूत सृष्टि प्रवृत्त छे ते पोते ज सर्जन करी करीने तेनो उपभोग करे छे । एने सृष्टिनी रचना करवामां बीजुं कोई सहकारी कारण नथी वळी ते पोताने के बीजाने के अन्यने सरजतो नथी ।

भावार्थ – अहीं कविए परमात्माने भूतसर्गना कर्ता अने उपभोक्ता तरीके वर्णवेल छे पण लौकिक कर्ता अने भोक्ताथी विलक्षणरूपे । कोई पण लौकिक कर्ता कांई सरजे तो तेने सहकारी कारणनी अवश्य अपेक्षा रहे छे, ज्यारे कवि कहे छे के परमात्माने तो अन्य कोई कारण सर्गसिद्धिमां अपेक्षित नथी । वळी आगळ वधी कवि कहे छे के खरी रीते परमात्मा नथी पोताने सरजतो के नथी परने । आ आखो विरोधाभास अपेक्षाभेदथी समाधेय छे । कविना आ आखा पद्यमां श्वेताश्वतरना 'न तस्य कार्यं करणं च विद्यते' (६.८) इत्यादि मन्त्रनो सार भाष्यरूपे रमे छे ।

निरिन्द्रियश्चक्षुषा वेत्ति शब्दान् श्रोत्रेण रूपं जिघ्रति जिह्वया च ।
पादैर्ब्रवीति शिरसा याति तिष्ठन् सर्वेण सर्वं कुरुते मन्यते च ॥ ८ ॥

अर्थ – जे निरिन्द्रिय छतां नेत्रथी शब्दोने जाणे छे, कानथी रूप जाणे छे अने जीभथी सूंघे छे । पगथी बोले छे, मस्तकथी उभो रहेतो छतां चाले छे, सर्वथी सर्व करे छे अने जाणे छे ।

भावार्थ – अहीं कवि परमात्माने निरिन्द्रिय कहे छे अने वळी इन्द्रियो द्वारा ते ते विषय ते जाणे छे एम पण कहे छे, ए एक विरोध छे । तेथीए विशेष विरोध तो एना ए कथनमां छे के नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियो कर्ण आदि अन्य इन्द्रि-

यना नियत विषय शब्द आदिने जाणे छे अने पग वगेरे कर्मेन्द्रियो पण वाक् आदि अन्य कर्मेन्द्रियनां कार्य करे छे। परमात्मा मस्तकथी उभा रहेवा अने चालवानुं पगनुं कार्य करे छे। एम कही छेवटे कवि त्यां सुधी जाय छे के परमात्माने वास्ते कोई अमुक साधन अमुक ज कार्य माटे नथी; पण तेने वास्ते तो सर्व साधन सर्व कार्यकारी छे। आ प्रकारना अत्यन्त विरुद्ध देखाता वर्णननुं तात्पर्य एटलुं ज छे के परमात्मानुं स्वरूप लौकिक वस्तुओथी निरालुं छे अने तेनी विभूति पण लौकिक विभूतिथी पर छे। योगशास्त्रना विभूतिपादमां जे विभूतिओनुं वर्णन छे ते विभूतिओ योगीनी छतां अद्भुत छे। गीताना ११ मा अध्यायमां कृष्णे अर्जुनने पोतानुं घोर विश्वरूप बताव्युं छे ते पण योगनो महिमा छे। अहीं तो कवि योगीथी पण पर एवा परमात्माने स्तवे छे, एटले ज तेणे चमत्कारी विरुद्धाभास वर्णनद्वारा अलौकिकत्व सूचव्युं छे।

सिद्धसेननुं प्रस्तुत वर्णन बहु पुराकालथी चाली आवती कविप्रथाना केटलांय सोपानो वटावी आगळ वधेलुं छे। ऋग्वेदना कविओ इन्द्र के अग्नि आदि देवोने स्तवे छे त्यारे सहस्राक्ष[1] जेवुं विशेषण वापरी पोतपोताना इष्टदेवोने हजार आँख-वाळारूपे महत्त्व अर्पे छे। पण पुरुषसूक्तनो ऋषि पुरुषनुं वर्णन करतां तेने मात्र सहस्राक्ष विशेषण आपी संतोष नथी पामतो; ते तो पुरुषने सहस्रशीर्षा[2] अने सहस्रपाद् पण कहे छे। विश्वकर्मा सूक्तनो प्रणेता हजार नेत्र, हजार पग के हजार मस्तकथी संतुष्ट नथी थतो; ते तो विश्वस्रष्टा देवने 'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्' (ऋ० १०.८१.३) कही हजार के तेथी मोटी कोई पण संख्याने पण अवगणे छे। ऋग्वेदना विशेषणविकासमां काल-क्रमनी गंध आवे छे। त्यार बाद यजुर्वेद अने अथर्ववेद आदि ग्रन्थोमां ए ज ऋग्वेदना विशेषणो ज्यां त्यां मळे छे। आ विशेषणोनो कालक्रमसूचक विकास गमे तेटलो थयो के विस्तर्यो होय छतां वेदोनी स्तुतिओ सगुणभूमिकाथी आगळ वधी नथी एम कही शकाय।

परंतु धीरे धीरे चिंतको सगुणरूपथी आगळ वधी निर्गुणचिंतन तरफ वळता जता हता। एना लक्षणो प्राचीन उपनिषदो अने गीतामां नजरे पडे छे। ज्यारे परब्रह्मनी स्थापना स्पष्ट थई त्यारे निर्गुणस्वरूपनुं चिंतन पराकाष्ठाए पहोंच्युं छे, तेम छतां तत्त्वचिंतको अने कविओ पुराणी सगुण वर्णननी प्रथाने पण चालु

---

१ ऋग्वेद १.२३.३। १.७९.१२। २ ऋग्वेद १.९०.१।

राखे छे। तेथी ज श्वेताश्वतर अने गीताकार परमात्मानुं निर्गुण वर्णन करवा छतां 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।' (श्वे० ३.१४) इत्यादि रूपे अने 'सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।' (श्वे० ३.१६) इत्यादि रूपे सगुण वर्णन पण करे छे। छांदोग्य आदिना अशरीरत्ववर्णननुं (छांदो० ८.१२.१) अनुकरण करी मुण्डक परब्रह्मनुं 'यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणि-पादम् ।' (मु० १.६) आदि रूपे वर्णन करे छे, ज्यारे श्वेताश्वतर तेनुं 'अपाणि-पादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।' (श्वे० ३.१९) आदि रूपे विरोधाभासी सगुण स्वरूपवर्णन करे छे।

सिद्धसेन पण प्रस्तुत स्तुतिमां परमात्मानुं निर्गुण अने सगुण स्वरूप स्तवे छे। आ पद्यमां तो ए उभय स्वरूपना वर्णन उपरान्त एक एवो प्रतिभाजनित चमत्कार देखाय छे के जे तेनी पूर्वना वेद, उपनिषद् अने गीता आदि ग्रन्थोमां दृष्टिगोचर थतो नथी। आ चमत्कार एटले मात्र विरोधाभास ज नहीं पण विरोधाभासनी पराकाष्ठा। सिद्धसेन एम कहे के परमात्मा निरिन्द्रिय छतां इन्द्रियना कार्यो करे छे त्यांलगी तो ते मुण्डक अने श्वेताश्वतर करतां आगळ नथी वधता, पण ज्यारे तेओ एम कहे छे के निरिन्द्रिय परमात्मा इन्द्रियोना कार्यो तो करे ज छे, पण वधारामां ते कानतुं काम आँखथी, आँखनुं काम कानथी, नाकनुं जीभथी, वाणीनुं काम पगथी अने पगनुं काम माथाथी करे छे; किंबहुना तेने वास्ते कोई एक काम एक साधन द्वारा ज करवानुं बन्धन नथी; त्यारे ते श्रोताना मन उपर चमत्कारिक असर उपजावी तेने परमात्मानी लोकोत्तर चमत्कारिकतामां श्रद्धालु बनावी कविकृत्य साधे छे।

शब्दातीतः कथ्यते वावदूकैर्ज्ञानातीतो ज्ञायते ज्ञानवद्भिः[1] ।
बन्धातीतो बध्यते क्लेशपाशैर्मोक्षातीतो मुच्यते निर्विकल्पः ॥ ९ ॥

अर्थ—शब्दथी अतीत छतां ते वादिओना वादनो विषय बने छे, ज्ञानथी अतीत छतां ते ज्ञानीओना ज्ञाननो विषय बने छे, बन्धनथी अतीत छतां क्लेश-पाशथी बंधाय छे अने मोक्षातीत छतां निर्विकल्प थई मुक्त थाय छे।

भावार्थ—तैत्तिरीय आदि उपनिषदोमां "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।" (तै० २-९) जेवां वर्णनो छे। तेमां आत्मानुं शब्दातीतत्व अने मनो-ऽगम्यत्व प्रतिपादित थयुं छे। बीजी बाजू पाछां ए ज उपनिषदो आत्मानुं निरू-

1 ज्ञानविद्भिः—मु०।

पण करे छे, अने ज्ञानीओने आत्मज्ञान माटे प्रोत्साहित करे छे, जेम के 'श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ।' (बृ० २.४.५) इत्यादि । आत्मब्रह्मने कूटस्थ मानी बंधमोक्षथी अतीत कहेवामां आव्युं छे अने वळी 'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति ।' (तै० २.६) अने 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् ।' (तै० २.६) इत्यादि द्वारा आत्मब्रह्मने सृष्टिबद्ध पण वर्णववामां आव्युं छे । उपनिषदो अने बधां ज बीजां अध्यात्मशास्त्रोनुं कथन ए छे के निर्विकल्पसमाधि प्राप्त करनार आत्मा मुक्त थाय छे । आवा परस्पर विरुद्ध देखातां उपदेशवाक्योने अवलम्बी कविए आत्मानी परस्पर विरुद्ध अवस्थाओनुं आलंकारिक भाषामां वर्णन कर्युं छे, पण तेनुं तात्पर्य तो ए छे के आ विविध वर्णनो परस्पर असंगत नथी, पण दृष्टिभेदथी प्रवर्तेलां छे । आ ज वस्तुने जैनपरिभाषामां मूकी कहेवुं होय तो एम कही शकाय के पारमार्थिक – कर्मनिरपेक्ष स्वाभाविक – दृष्टिए आत्मा नथी वाच्य, नथी तर्क्य, नथी बद्ध के नथी मुक्त; पण व्यावहारिक अने कर्मसापेक्ष वैभाविकदृष्टिए आत्मा शब्दगम्य, ज्ञानध्यानगम्य, बद्ध अने मुक्त पण छे ।

प्राचीन जैन श्रुतमां अतिमहत्त्व धरावनार आचाराङ्गसूत्रमां आत्मानी स्वाभाविक स्थितिनुं वर्णन छे ते उपनिषदोमांना निर्गुणब्रह्मवर्णननी याद आपे छे । ते कहे छे के "सव्वे सरा नियट्टंति, तक्का तत्थ न विज्जइ, मई तत्थ न गाहिया, से न दीहे न हस्से, न कीण्हे न नीले न लोहिए, न सुरभिगंधे न दुरभिगंधे, न तित्ते न कडुए, न गुरुए न लहुए, न इत्थी न पुरिसे न अन्नहा परिन्ने सन्ने उवमा न विज्जए ।" (५.६.१७०) ।

नायं ब्रह्मा न कपर्दी न विष्णुर्ब्रह्मा चायं शङ्करश्चाच्युतश्च ।
अस्मिन्मूढाः प्रतिमाः कल्पयन्ते[1] ज्ञातश्चायं न च भूयो नमोऽस्ति ॥१०॥

अर्थ – आ परमात्मा नथी ब्रह्मा, नथी शङ्कर के नथी विष्णु; अने छतां ए ब्रह्मा छे, शङ्कर छे अने विष्णु पण छे । मूढ माणसो ज परमात्मा विषे विविध प्रतिमाओनी कल्पना करे छे, ज्यारे आ आत्मा ज्ञात थाय छे त्यारे फरी नमस्कार करवापणुं नथी रहेतुं ।

भावार्थ – लोकपरम्परा अने पौराणिक मान्यताओमां ब्रह्मा, विष्णु अने महेश्वरनी त्रिमूर्ति पूजाय तेम मनाय छे अने उपासक पोतानी रुचि के संस्कार प्रमाणे परमात्माने ज ब्रह्मा, शङ्कर के विष्णुरूपे भजे छे । वळी लोको अने घणी

१ कल्पयन्तो – मु० ।

वार शास्त्रो पण ए त्रिमूर्तिने परस्पर विरुद्ध माने अने मनावे छे। आ वस्तुस्थिति ध्यानमां लई कवि परमात्मानुं यथार्थ – निर्गुण वर्णन करवा अने लोक तथा शास्त्रमां रूढ थई गएल विरोधी भावनाने निर्मूल करी तेने स्थाने समन्वयदृष्टि केळववा सगुणवर्णन करतां, कहे छे के परमात्मा तो नथी ब्रह्मा, नथी शङ्कर के नथी विष्णु अने तेम छतां ते त्रणे रूप छे – कोई एकरूप तो नथी ज।

लोको परमात्मानी उपासना माटे अनेक जातना प्रतीको कल्पे छे, अनेक नामथी अनेक प्रकारनी मूर्तिओ रचे छे अने पछी तेमां ज गरक थई मूल ध्येय भूली जाय छे। एवा लोकोने उद्देशी कवि 'न तस्य प्रतिमा अस्ति।' (श्वे० ४.१९) ए श्वेताश्वतरना कथननुं भाष्य करतो होय तेम साचुं ज कहे छे, के मूढ होय छे ते ज परमात्मानी अनेक प्रतिमाओ कल्पे छे। बाकी खरी वस्तुस्थिति तो ए छे के जेओने परमात्मानुं स्वरूप अवगत थाय छे तेमने वास्ते फरी के वधारे नमस्कार करवापणुं रहेतुं ज नथी। तेओ पोते ज परमात्मरूप बने छे अने तेमना उपरनुं तम निःशेष थई जाय छे।

आपो वह्निर्मातरिश्वा हुताशः सत्यं मिथ्या वसुधा मेघयानम्।
ब्रह्मा कीटः शङ्करस्तार्क्ष्यकेतुः सर्वः सर्वं सर्वथा सर्वतोऽयम्॥ ११॥

अर्थ – परमात्मा ज पाणी अने वह्नि छे, पवन अने हुताशन छे, सत्य अने मिथ्या छे, पृथ्वी अने आकाश छे, ब्रह्मा अने कीटक छे, शङ्कर अने गरुडध्वज – विष्णु छे। आ सर्व – परमात्मा दरेक रीते दरेक स्थळे सर्वरूप छे।

भावार्थ – केटलाक वैदिक मंत्रो, उपनिषदो अने गीतामां ए भावना सुप्रसिद्ध छे के एक ज परमात्मा नानारूप ले छे अने नानारूपे विलसे छे। ए ज भावनाने अहीं कविए परस्पर विरुद्ध देखातां आधिभौतिक अने आधिदैविक द्वन्द्वोथी अभिन्नरूपे परमात्मानुं वर्णन करी व्यक्त करी छे। श्वेताश्वतरनो "तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदापस्तत्प्रजापतिः।" (४.२) आ मन्त्र प्रस्तुत पद्य साथे सरखावी शकाय। तैत्तिरीय (२.६) मां ब्रह्म नानारूप धारण कर्यानुं वर्णन छे तेमां अनेक विरोधी द्वंद्वो साथे 'सत्यं चानृतं च अभवत्' ए वाक्य द्वारा जे सत्यानृत द्वंद्वनो उल्लेख छे, तेने ज अहीं कविए सत्य-मृषा कहेल छे। शुक्लयजुर्वेद (१९.७७) मां 'दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः' ए मन्त्रमां पण प्रजापतिए सत्य अने अनृत बे रूपनुं व्याकरण कर्यानो प्राचीन प्रवाद छे।

अहीं वह्नि अने हुताश बे पदो समानार्थक आवेलां होवाथी पुनरुक्तिनो भास थाय छे, पण वस्तुतः तेम नथी। वह्निथी जे अग्नि समजवानो ते जलविरोधी सामान्य अग्नि लेवो जोइए अने हुताश पदथी आहुति द्रव्यने झीलनार यज्ञीय विशिष्ट वह्नि लेवानो छे, जेने मातरिश्वाथी विरोधी लेखवामां आव्यो छे। मातरिश्वानो अर्थ वैदिकमंत्रोमां 'मॉनसून' (चोमासुं सूचवतो पवन) करेलो छे[१]। चोमासानो तोफानी पवन के तेथी सूचवातुं चोमासुं ए हुताशन विरोधी एटला माटे मनायुं होवुं जोइए के सामान्यरीते चोमासामां यज्ञप्रथा नहीं होय।

स एवायं निभृता येन सत्त्वा :शश्वद्दुःखा दुःखमेवापियन्ति।
स एवायमृषयो यं विदित्वा व्यतीत्य नाकममृतं स्वादयन्ति ॥ १२ ॥

अर्थ—आ तेज परमात्मा छे जेना वडे भरेलां अने व्यापेलां प्राणिओ सतत दुःखवाळां थई दुःख ज पाम्या करे छे। आ तेज परमात्मा छे जेने जाणीने ऋषिओ स्वर्गनुं अतिक्रमण करी अमृतने आस्वादे छे।

भावार्थ—बधां ज प्राणिओ परमात्मभावथी भरेलां छे अने उभराय छे। तेम छतां ते निरन्तर दुःखी रही दुःख पाम्या ज करे छे। आ कथन विरुद्ध छे, केम के प्राणिओ परमात्मरूप होय तो दुःख स्पर्शी ज केम शके? आ विरोधनो परिहार जाणीतो छे। तात्त्विकदृष्टिए बधा ज जीवात्मा परमात्मरूप छे, पण पोताना खरा स्वरूपनुं भान न होवाथी ते दुःख पामे छे। आ ज वस्तु कविए उत्तरार्धमां व्यतिरेक द्वारा कही छे के जे ऋषिओने आत्मज्ञान छे तेओ अमृत ज बने छे। स्वर्गनुं अतिक्रमण करी अमृतनुं आस्वादन करे छे ए वर्णनमां देखीतो विरोध छे। केम के स्वर्गमां ज अमृतना अस्तित्वनी मान्यता छे, तो तेने स्वर्ग लांघनार केम चाखे? समाधान ए छे के मान्यतानुं स्वर्गीय अमृत ए वास्तविक अमृत नथी, वास्तविक अमृत जे आत्मानुं स्वाभाविक स्वरूप छे ते तो स्वर्ग लांघी जनारने ज प्राप्त थाय छे।

आ पद्यमां रहेलो भाव श्वेताश्वतरना 'ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम्। य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति।' (३.१०) मन्त्रमां स्पष्ट छे।

विद्याविद्ये यत्र नो संभवेते यन्नासन्नं नो दवीयो न गम्यम्।
यस्मिन्मृत्युर्नेहते नो तु कामैः स सोऽक्षरः परमं ब्रह्म वेद्यम् ॥ १३ ॥

अर्थ—जेमां विद्या अने अविद्या नथी संभवता, जे नथी समीप के नथी दूरतर,

१ मोनियर् विलियम्सकृत संस्कृत कोष।
२ नोतुकामा—मु०।

के नथी गम्य, जेमां नथी मृत्यु प्रवृत्त थतुं के नथी काम प्रवृत्त थतो, ते अने ते ज अक्षर – अविनाशी छे अने ज्ञेय एवुं परब्रह्म छे ।

भावार्थ – कविए अहीं परमात्मानुं निर्गुणस्वरूप वर्णवेलुं छे । तेथी ज ते अविद्या एटले कर्ममार्ग अने विद्या एटले आत्मलक्षी शास्त्र बन्नेना संभवथी परमात्माने पर कहे छे । परमात्मा नथी आसन्न के नथी दूर ए वर्णन ईशावास्यना 'तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।' (५) ए वर्णननी याद आपे एवुं छे । प्रस्तुत पद्यमां श्वेताश्वतरना 'द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढे । क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः ।' (५.१) आ मंत्रनो भाव रमे छे ।

ओतप्रोताः पशवो येन सर्वे ओतः प्रोतः पशुभिश्चैव सर्वैः ।
सर्वे चेमे पशवस्तस्य होम्यं तेषां चायमीश्वरः संवरेण्यः ॥ १४ ॥

अर्थ – जेना वडे आ बधां पशुओ – जीवात्माओ ओतप्रोत छे अने ए पोते बधा पशुओ – जीवात्माओ द्वारा ओतप्रोत छे । आ बधा पशुओ तेनुं हव्य छे अने ए बधां पशुओने वास्ते आ वरवा योग्य ईश्वर छे ।

भावार्थ – कवि अहीं पाशुपत परम्पराने अनुसरी 'पशु'पद जीवात्माना अर्थमां प्रयोजे छे अने ते जीवात्मा–परमात्मानो सम्बन्ध अहीं आलंकारिक रीते व्यक्त करे छे । कवि जीवात्मा अने परमात्माने एक-बीजाथी ओतप्रोत कही ते बे वच्चे अभेद सम्बन्ध दर्शावे छे अने छतां ते अभेद विशिष्टाद्वैत कोटिनो होय तेम तेना रूपक उपरथी लागे छे ।

यज्ञमां पशुओ होमातां तेथी ते उद्दिष्ट देवताना होम्य – हव्यद्रव्य कहेवाय छे अने ते ते उद्दिष्ट देवता होम्य पशुओनो आराध्य मनाय छे । आ वस्तुनो रूपकमां कविए जीवात्मा अने परमात्मा वच्चेनो आध्यात्मिक सम्बन्ध स्पष्ट करतां कह्युं छे के जीवात्माओ ए परमात्माना होम्य छे, एटले के परमात्मभावने वरवानुं ध्येय राखनार जीवात्माओए पोतानी जातनुं – जीवभावनुं बलिदान करवुं ज जोईए ।

तस्यैवैता रश्मयः कामधेनोर्याः पाप्मानमदुहानाः क्षरन्ति ।
येनाध्याताः पंच जनाः स्वपन्ति प्रोद्बुद्धास्ते स्वं परिवर्तमानाः ॥ १५ ॥

अर्थ – जेनाथी आध्यात – जेना संकल्पनो विषय बनेल पंचजनो – निषाद अने चार वर्णो मळी पांच जन या पाँच इन्द्रियो सूवे छे अने जेना वडे उद्बोध पामेला ते पंचजनो पोता प्रत्ये पाछा वर्तता होय छे । ते ज परमात्मरूप काम-धेनुना आ रश्मिओ छे के जे आपमेळे पापने नहीं दूझतां झरे छे ।

१ गीता १३.१५ ।

भावार्थ—अहीं कविए बे विरोधाभास द्वारा चमत्कारिक रीते परमात्मानी विभूतिनुं वर्णन कर्युं छे। ते कहे छे के परमात्मानी अभिमुखतारूप आध्यानना स्पर्श थतां ज मनुष्यमात्र अथवा इन्द्रियो स्वप्रवश बने छे, एटले के तेओ परमात्मस्पर्शरूप निद्रामग्नना प्रभावथी भान गुमावी निद्रावश बने छे अने ज्यारे तेओ जागे छे त्यारे पोताना कार्यप्रदेश प्रत्ये पाछा फरे छे।

आ देखीतो विरोध छे, केमके परमात्मानो स्पर्श ए तो गमे तेमां जागृति आणे तेने बदले ते माणसने प्रवृत्तिक्षेत्रथी दूर करी निद्रावश अने भानभूल्यो केम बनावे? जो ते एम करे तो पछी परमात्मस्पर्शने बदले तेने चोरोए प्रयोजेल निद्रामग्नो स्पर्श ज कहेवो जोइए? आ प्रापंचिक विरोधनो परिहार आध्यात्मिकदृष्टिना विचारमां छे। आध्यात्मिकदृष्टि एम कहे छे के माणसो अने तेनी इन्द्रियो पोतपोताना प्रवृत्तिक्षेत्रमां रममाण होय छे त्यारे ज ते तात्त्विकदृष्टिए निद्रावश होय छे। हृदयमां परमात्मानुं स्पंदन थतां ज माणस अने इन्द्रियोनी ए दशा चाली जाय छे अने ते प्रवृत्तिक्षेत्रना स्थूलरसनी निद्रा छोडी कोई नवजागरण अनुभवे छे। आवुं जागरण ते ज अहीं परमात्मस्पर्शजनित निद्रारूपे वर्णवेल छे। अने ज्यारे आवी निद्राथी माणस अने इन्द्रियो जागे छे त्यारे ते पाछी पोतपोताना विषयभणी वळी भोगाभिमुख बने छे।

उक्त निद्रा अने जागरण समजवामां 'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी' गीतानो (२.६९) आ श्लोक अने तेनुं आचार्य हेमचन्द्रे काव्यानुशासनमां करेलुं विवरण (पृ० ७०) उपयोगी थई शके तेम छे।

कवि परमात्माने कामधेनु कल्पी तेनी चोमेर पथराएली विभूतिओने स्तननुं[1] रूपक आपी कहे छे के ते आपमेळे ज पापने दूज्या सिवाय ज झर्या करे छे। अहीं विरोध ए लागे छे के परमात्मानी विभूतिओने जो आपमेळे दूजवा दीधी होय एटले तेने आपमेळे पोतपोतानुं काम करवा दीधुं होय तो ते सदाय भलुं करे छे। पण जो तेने प्रयत्नथी दोवा मांडो के निचोवो तो तेमांथी पाप ज झरे छे, बुराई ज प्रकटे छे। आ देखीतो विरोध छे। कामधेनुना स्तनोने हाथथी निचोवो के आपमेळे दूझवा द्यो तो पण तेमांथी एकसरखुं दूध ज झरे। ज्यारे अहीं तो प्रयत्नथी निचोवतां तेमांथी बुराई प्रकटवानुं कहेवामां आव्युं छे।

---

१ मूळमां रश्मि शब्द छे तेनो सीधो अर्थ स्तन नथी पण अहीं प्रसंग जोई किरणनुं सादृश्य कल्पी ते अर्थ कर्यो छे।

आ विरोधनो परिहार ए रीते थई शके छे के आधिभौतिक, आधिदैविक अने आध्यात्मिक ए बधी परमात्मानी विभूतिओने ज्यारे माणस पोताना आहंकारिक प्रयत्नथी भोगदृष्टिए निचोवे छे, एटले तेना साहजिक प्रवाहने पोताना लोभथी कुंठित करे छे त्यारे ते विभूतिओमांथी कल्याण साधवाना बदले अकल्याण साधे छे। कोई सूर्यना साहजिक प्रकाश-प्रवाहने रोकवा मथे अथवा मेघने वरसतां रोकवा मथे तो तेमां तेनुं अने बीजानुं अहित ज थवानुं। कविनुं तात्पर्य ए लागे छे के जे जे जगतमां विभूतिरूप छे तेमांथी वगर प्रयत्ने सौनुं कल्याण ज सधाय छे। जो ए विभूतिओने निचोववा मथो तो तेमांथी अकल्याण ज प्रकटवानुं। कामधेनुना स्तनो आपमेळे दूध वरसावे छे, पण वधारे लालचथी तेने निचोववा मथो एटले तेमांथी रुधिर पण झरे। ए ज न्याय परमात्मानी कुदरती विभूतिओने पण लागू पडे छे।

तमेवाश्वत्थमृषयो वामनन्ति हिरण्मयं व्यस्तसहस्रशीर्षम्।
मनःशयं शतशाखप्रशाखं यस्मिन् बीजं विश्वमोतं प्रजानाम्॥ १६॥

अर्थ—जेमां प्रजाओनुं संपूर्ण बीज रहेलुं छे तेने ज ऋषिओ अश्वत्थवृक्षरूपे वर्णवे छे, तेने ज फेलाएल हजार मस्तकधारी ब्रह्मारूपे वर्णवे छे अने तेने ज सेकडो शाखाप्रशाखावाळा कामरूपे वर्णवे छे।

भावार्थ—सांख्य-परम्परा प्रमाणे सृष्टिमात्र के प्राणीवर्गनुं जन्मबीज अव्यक्त प्रकृतिमां समाएलुं छे। ज्यारे ब्रह्मवादी परम्परा प्रमाणे ए जननबीज—शक्ति परब्रह्म परमेश्वरमां निहित छे। अहीं कवि ईश्वरवादी परम्पराने लक्षी परमात्माने ज समग्र प्राणीवर्गनी जननशक्तिना आधार तरीके निर्देशे छे। अने साथे साथे ते कहे छे के ऋषिओ ए ज परमात्माने वेद, उपनिषद्, महाभारत, गीता आदिमां अश्वत्थरूपे हिरण्यगर्भरूपे तेम ज कामरूपे वर्णवे छे।

ऋग्वेदना सूक्तमां (१.२४.७) वरुणना वृक्षनुं वर्णन छे। अथर्ववेदमां (५.४.३) अश्वत्थवृक्षनुं वर्णन छे, कठमां (६.१) अने गीतामां (१५.१) ए ज अश्वत्थवृक्षनुं 'ऊर्ध्वमूलमधःशाखं' इत्यादिरूपे सविशेष वर्णन छे अने गीतामां तो पाछुं कठथी वधारे 'अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः' (१५.२) इत्यादिरूपे वर्णन छे। श्वेताश्वतर (६.६) अश्वत्थ नाम न आपतां मात्र वृक्ष शब्दथी एनो निर्देश करे छे। दृश्यसंसारना पसारानुं ज ए वृक्ष के अश्वत्थना रूपकमां ऋषिओए वर्णन कर्युं छे। कवि ते रूपकने उद्देशीने ज कहे छे के ऋषिओ परमात्मानुं ज अश्वत्थरूपे वर्णन करे छे। अहीं कवि संसार अने

परमात्मानो अभेद वर्णवे छे। ज्यारे ब्रह्म ज जगतनुं कारण मनायुं त्यारे ब्रह्मवादिओए ए ब्रह्मने ज अश्वत्थरूपे वर्णव्युं छे।

पुरुषसूक्तमां (१०.९०.१) सहस्रशीर्षरूपे पुरुषनुं वर्णन छे। ते पुरुष एटले लोकपुरुष या ब्रह्मा, प्रजापति के हिरण्यगर्भ। ए ज ऋषिकृत वर्णनने लक्ष्यमां राखी कवि कहे छे के ते ज हिरण्यगर्भ परमात्मा छे। प्राचीनकालमां प्रजानुं मूल हिरण्यगर्भ के ब्रह्मामां मनातुं। ब्रह्मवादनी प्रतिष्ठाना समयमां ए मूल परमात्मामां मनायुं। कवि ए प्राचीन अने नवीन विचारधारानुं एकीकरण करी कहे छे के हिरण्यगर्भ ते ज परमात्मा छे।

काम – तृष्णा – संकल्प के वासना ए ज संसारनुं बीज छे। तेमांथी ज सृष्टिनी नानी मोटी सेंकडो शाखाओ प्रवर्ते छे। आ वस्तु 'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति' (तै० २.६) इत्यादिरूपे ऋषिओए वर्णवेली छे। तेने लक्ष्य करी कवि कहे छे के ए काम ते बीजुं कोई नहीं पण परमात्मा ज छे। 'कामोऽस्मि भरतर्षभ' (गी० ७.११)नी पेठे काम अने परमात्मानो अभेद दर्शाववामां कविनुं तात्पर्य एटलुं ज छे के सर्वना प्रभव तरीके जे जे मनाय छे ते परमात्मा ज छे। आ रीते प्राचीन ऋषिओए नानारूपे गाएलो महिमा ते बधो परमात्मानो ज छे एम कवि सूचवे छे।

स गीयते वीयते चाध्वरेषु मन्त्रान्तरात्मा ऋग्यजुःसामशाखः।
अधःशयो विततांगो गुहाध्यक्षः स विश्वयोनिः पुरुषो नैकवर्णः॥१७॥

अर्थ – ऋग्, यजु अने सामरूप शाखावाळो एवो मन्त्रोनो अन्तरात्मा ते ज यज्ञोमां गवाय छे अने स्तवाय के विनवाय छे। गुहानो अध्यक्ष, अधःशायी अने अङ्गो विस्तारेल एवो ते ज अनेकवर्ण विश्वयोनि पुरुष छे।

भावार्थ – अहीं कर्मकाण्डमां प्रयोजाता मन्त्रो अने विधिओना हार्दरूपे तेम ज ज्ञानकाण्डना चिन्तनमां सिद्ध थएल आध्यात्मिक तत्त्वरूपे परमात्मानुं एकीकरण करवामां आव्युं छे। यज्ञोमां वैदिक मन्त्रो विधिपूर्वक उच्चाराता अने जुदा जुदा देवोनी स्तुति द्वारा प्रार्थना थती। आ स्तवाता अने विनवाता अनेक देवोमांथी एक देवनो विचार फलित थतो गयो त्यारे एम मनावा लाग्युं के बधा ज मन्त्रो भले ते ऋग्वेद, यजुर्वेद के सामवेदरूपे विभक्त थया होय अने जुदी जुदी शाखाओ पडी होय; छतां तेनो परमार्थ के तेमां रहेल अन्तर्गत सार तत्त्व ते तो एक ज छे अने ते ज अनेक यज्ञोमां गवाय तेम ज विनवाय छे।

कर्मकाण्ड पछीनी बीजी भूमिका ज्ञानकाण्डनी छे। तेमां तत्त्वचिंतको अने संतो मुख्यपणे जगतना मूलतत्त्वनी शोध पाछळ पड्या हता। एना परिणामे तेमने एक एवुं आध्यात्मिकतत्त्व लाध्युं जेने तेमणे विश्वयोनि तरीके मान्युं अने वर्णव्युं। ते तत्त्वचिंतक संतोए आ तत्त्वने अनेक जातना विरोधाभासी वर्णनो द्वारा अलौकिक रीते वर्णवेलुं छे। ए बन्ने भूमिकाओना फलितार्थनुं एकीकरण करी कवि अहीं कहे छे के यज्ञोमां जुदी जुदी शाखाओ द्वारा गवातो स्तवातो पुरुष अने तत्त्वज्ञ संतोमां गुहाध्यक्ष तेम ज विश्वयोनि तरीके प्रसिद्ध पुरुष ए एक ज छे।

कोई योगी पुरुष गुफावासी अने गुफा-अध्यक्ष होय ते हाथ पग वगेरे अङ्गो फेलावी नीचे पड्यो रहे, पण तेवो पुरुष विश्वयोनि अने अनेकवर्ण केम होई शके? ए एक प्रकारनो विरोध छे, पण तेनो परिहार आध्यात्मिकदृष्टिमां छे। आध्यात्मिकदृष्टिए परमात्मा ए ज मुख्य पुरुष छे, ते दृश्य जगतनी नीचे तेनी पेलीपार रहेलो होई अधःशायी पण छे अने ते पोताना शक्तिरूप अङ्गो प्रकृतिना पट उपर चोमेर विस्तारतो होवाथी वितताङ्ग पण छे। ते बुद्धिरूप गुफामां स्फुरित थतो होवाथी अने हृदयगुफानुं नियमन करतो होवाथी ते गुफा-अध्यक्ष कहेवाय छे। अने छतां ते विश्वयोनि तो छे ज। ते पुरुष मूळमां अवर्ण के एकवर्ण होवा छतां विश्वमां अनेकरूपे विलसतो होवाथी अनेकवर्ण पण छे।

प्रस्तुत पद्यना उत्तरार्ध साथे श्वेताश्वतरना नीचेना बे मंत्रो सरखाववा जेवा छे—"यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः पाच्यांश्च सर्वान्परिणामयेद्यः" (५.५), "य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति" (४.१)।

तेनैवैतद्वितत्तं ब्रह्मजालं दुराचरं दृष्ट्युपसर्गपाशम्[1]।
अस्मिन्मग्ना मानवा मानशल्यैर्विवेष्यन्ते[2] पशवो जायमानाः ॥ १८ ॥

अर्थ—तेनाथी ज आ ब्रह्मजाल विस्तरेलुं छे के जे दुष्प्रवेश छे अने दृष्टिने उपसर्ग करनार छे। ए ब्रह्मजालनी अन्दर मग्न एवा मनुष्यो पशु बनी मानरूप शल्यथी विंधाय छे।

भावार्थ—अहीं कविए ब्रह्माण्डने जालरूपे कल्पी तेने फेलावनार तरीके परमात्मानो निर्देश करी सूचव्युं छे के ब्रह्मजालने फेलावनार जे जाली धीवर के पारधी ते तो परमात्मा ज छे। जाल अने ब्रह्माण्डनुं साम्य स्पष्ट छे। जालम

१ °पासम्—मु०।
२ माननामा(नं)शल्यैः—मु०।

फसाया पछी तेमां चालवुं, हरवुं, फरवुं, निकळवुं मुश्केल बने छे। ब्रह्माण्ड पण एवुं ज। जाळमां फसनारनी दृष्टि अंजाई जाय छे, तेने कांई सूझतुं नथी। ब्रह्माण्डमां पडेलनी पण ए ज दशा होय छे। जाळमां लोभाईने फसाएल हरण वगेरे पशुओ तेना कांटाओ अने बंधनोथी घेराई घवाय छे। ब्रह्माण्डमां पण आसक्त थई गर्क थएल माणसो पशुनी पेठे लाचार बनी मानापमानना शल्योथी विंधाय अने घवाय छे।

अहीं जाल नाखनार जाळी तरीके वर्णन करी कविए निंदास्तुति अलङ्कार द्वारा परमात्मानो महिमा ज गायो छे।

तुलना—प्रस्तुत पद्यमां जाळी तरीके परमात्मानुं वर्णन छे तेवुं श्वेताश्वतरमां पण छे। जेम के 'य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वांल्लोकानीशत ईशनीभिः।' (३.१), 'एकैकं जालं बहुधा विकुर्वन्नस्मिन्क्षेत्रे संचरत्येष देवः।' (५.३) पण अहीं कविए 'दुराचरं दष्ट्युपसर्गपाशम्' जेवा विशेषणोथी जाळनुं स्पष्टीकरण विशेष कर्युं छे। अने एमां फसनार माणसो पशुनी पेठे केवी रीते जकडाय छे ते सूचव्युं छे।

अयमेवान्तश्चरति देवतानामस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः।
अयमुद्दण्डः प्राणभुक् प्रेतयानैरेष त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति ॥१९॥

अर्थ—आ ज देवताओनी अन्दर विचरण करे छे, अने बधा देवो आनी ज अन्दर रहेला छे, आ ज दण्डधारण करी प्रेतयानोथी प्राणभोजी बने छे अने आ ज त्रण रीते बद्ध थई वृषभरूपे बराडे छे।

भावार्थ—मन्त्र, ब्राह्मण अने उपनिषदो वगेरेमां जे चमत्कारी वर्णनो छे तेमांथी केटलांक लई अहीं कवि तेने परमात्मस्तुतिरूपे गूंथे छे। ऋग्वेदमां "चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा। द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति।" (४.५८.३) आ मन्त्र छे। तेनुं सायणे यास्क निरुक्तभाष्यने अनुसरी यज्ञाग्नि अने सूर्यपरक व्याख्यान कर्युं छे। शाब्दिक पतंजलिए महाभाष्यमां ए मन्त्रने शब्दपरक योज्यो छे, ज्यारे सिद्धसेन अहीं तेनुं मात्र एक पाद परमात्मपरक योजे छे। तेनुं तात्पर्य अहीं परमात्माना सगुणरूप वर्णननुं होय एम लागे छे। परमात्मा छे तो वृषभ एटले उत्तम अथवा कल्याण-गुणवर्षण करनार—स्वतन्त्र; पण ज्यारे ते सत्त्व, रजस अने तम ए त्रण गुणथी बंधाय छे अथवा राग-द्वेष-मोहना बन्धनमां पडे छे त्यारे ते नाके, गळे अने पगे त्रिधा बंधाएल सांढनी पेठे बुमराण मचावी तोबा पोकारावे छे।

"यश्चायमादित्ये तेजोमयोऽमृतमयः" (बृ० २.२.५) इत्यादिरूपे उपनिष-दोमां परमात्मानुं वर्णन छे । तेवां वर्णनोने लक्ष्यमां राखी कविए अहीं परमात्माने देवताओना अन्तश्चारी तरीके वर्णव्यो लागे छे । बधा देवो परमात्मामां रह्या छे ए अर्थनुं प्रस्तुत पद्यनुं बीजुं पाद तो जेमनुं तेम श्वेताश्वतरमां "अस्मिन्देवा अधि-विश्वे निषेदुः" (४.८) छे । प्राणीओने प्रेतलोकमां लई जवानुं काम दण्डधर यमने सुप्रत छे एवुं पौराणिक वर्णन छे । यम प्रेतलोकमां जनार प्राणीओनुं शासन करतो होवाथी दण्डधर अने भयानक कल्पाय छे, तेवा यम तरीके पण परमात्मानो निर्देश करी कवि सूचवे छे के परमात्मा पुण्यशाली प्रत्ये जेटलो कोमल छे तेटलो ज पापीओ प्रत्ये कठोर छे ।

अपां गर्भः सविता वह्निरेष हिरण्मयश्चान्तरात्मा देवयानः ।
एतेन स्तंभिता सुभगा द्यौर्नभश्च गुर्वी चोर्वी सप्त च भीमयादसः ॥२०॥

अर्थ – चन्द्र, सूर्य, वह्नि, हिरण्मय, अन्तरात्मा अने देवयान आ ज छे, एनाथी ज सुन्दर स्वर्ग, आकाश, महती अथवा वजनदार पृथ्वी अने सात समुद्रो थंभेला छे ।

भावार्थ – "तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदापस्तत्प्रजापतिः ॥" (४.२) आ मंत्रमां जेम श्वेताश्वतरे ब्रह्मनुं अनेक देवो रूपे वर्णन कर्युं छे तेम अहीं कविए पूर्वार्धमां अनेक देवो रूपे परमात्मानुं वर्णन कर्युं छे अने त्यार बाद जेम ऋग्वेद तेम ज यजुर्वेदना "येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः । योऽन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥" (ऋ० १०.१२१.५, शु० य० ३२.६) आ मंत्रमां हिरण्य-गर्भ प्रजापतिने सर्वना आधारस्तम्भ तरीके वर्णवेल छे अने जेम बृहदारण्यकमां "एतस्य वै अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत एतस्य वै अक्ष-रस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृतौ तिष्ठतः" (३.८.९) इत्यादि द्वारा सूर्य, चन्द्र आदिनी नियमित स्थितिना नियामकरूपे अक्षर – परमात्मानुं वर्णन छे अने जेम मुण्डकमां "अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः" (२.१.९) समुद्र, पर्वत, नदी वगेरेना नियमित कार्यना कारण तरीके वर्णन छे तेम अहीं उत्तरार्धमां कविए स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी अने सात समुद्रनी स्थिति परमात्माने लीधे छे एवुं वर्णन कर्युं छे । जे शाब्दिक दृष्टिए ऋग्वेदना उपर निर्देशेल मंत्रनुं प्रतिबिम्ब मात्र छे ।

१ °रात्मानसो दे° मु० ।

पुराणो अने लोकोमां समुद्रनी सात संख्या प्रसिद्ध छे। तेथी सप्तद्वीपसमुद्रा वसुमती कहेवाय छे।

अहीं पूर्वार्धमां तो सर्व कांई परमात्मरूप छे एवुं कारणाभेद वर्णन छे। ज्यारे उत्तरार्धमां आखुं जगत परमात्माने लीधे ज टकेलुं छे एवुं माहात्म्य वर्णन छे। जे लोकमां गया पछी पुनरावृत्ति नथी थती ते देवयान कहेवाय छे। पितृयान-लोक एथी जुदो छे, केमके त्यांथी पुनरावृत्ति थाय छे।

मनः सोमः सविता चक्षुरस्य घ्राणं प्राणो मुखमस्याज्यपिबः।
दिशः श्रोत्रं नाभिरभ्रमब्दयानं पादाविला सुरसाः सर्वमापः॥ २१॥

अर्थ—चन्द्र ते आनुं—परमात्मानुं मुख छे, सूर्य नेत्र छे, प्राणवायु घ्राण—नासिका छे, घृतपायी—अग्नि आनुं मुख छे, दिशाओ श्रोत्र छे, आकाश नाभि छे, पृथ्वी पग छे अने सुरस जल ते सर्व कांई छे।

भावार्थ—ऋग्वेद जेवा प्राचीन ग्रन्थोमां लोकपुरुषनुं वर्णन करतां ऋषिए विवक्षित पुरुषना ते ते अवयवमांथी आधिभौतिक अने आधिदैविक विभूतिओनी उत्पत्ति वर्णवी लोकपुरुषनुं महत्त्व गायुं छे। जेम के मनथी चन्द्र उत्पन्न थयो, चक्षुथी सूर्य, मुखथी इन्द्र अने अग्नि, प्राणथी वायु, नाभिथी अन्तरिक्ष, मस्तकथी स्वर्ग अने पगथी पृथ्वी थई इत्यादि (ऋ० १०.९०.१३.१४)। शुक्लयजुर्वेदमां ए ज वर्णननो थोडो विकास थयो छे। आगळ जतां जुदा जुदा उपनिषदोमां ए प्रक्रिया अनेक रूपे बहलाववामां आवी छे। दा. त. बृहदारण्यकमां (१.१.१) मेध्य अश्वना शिर आदि अनेक अङ्गो रूपे उषा आदि प्राकृतिक वस्तुओने कल्पी छे। अने वळी ते ज उपनिषदमां जुदे जुदे स्थळे ए ज वस्तु जुदा जुदा रूपकोमां थोडा घणा फेरफार साथे आवे छे[३]। ऐतरेयमां (१.१.४) मुखथी वाणीनी, वाणीथी अग्नि अने नासिकानी, नासिकाथी प्राणनी, प्राणथी वायु अने नेत्रनी इत्यादिरूपे उत्पत्ति वर्णवेली छे। आगळ जतां भागवतमां (२.१.२६–३९) तो एटलो बधो विकास थयो छे के प्रकृतिगत नानी मोटी संख्याबद्ध वस्तुओ प्रभु-शरीरना अङ्ग प्रत्यङ्गरूपे वर्णवाएली छे। आ प्रथानो उपयोग करी कवि अहीं

१ मुखमस्याद्यपिबं दिशः। श्रोत्रनाभिरभ्राभादयानं पादाविलाः–मु०।

२ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत।
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन्॥ ३१.१२.१३. शु० य०।

३ बृहदा० १. ५. १–१४। ३.१। ३.२.१३।

आधिभौतिक के आधिदैविक वस्तुओने परमात्माना अङ्ग प्रत्यङ्गरूपे वर्णवे छे अने ते रीते दृश्यमान समग्र जगतने परमात्मानुं शरीर कही तेनी सर्वव्यापकतानो महिमा गाय छे ।

कविए चन्द्र, सूर्य, प्राण, अग्नि, दिशा, आकाश, पृथ्वी अने पाणीने परमात्माना ते ते अवयवरूपे वर्णव्यां छे जे बराबर वेद अने उपनिषदोनी कल्पनानुं अनुकरण छे । कवि सुरस पाणीने सर्व कांई कहे छे ते रूपक कविनुं पोतानुं ज होय एम लागे छे ।

विष्णुर्बीजमंभोजगर्भः शम्भुश्चायं कारणं लोकसृष्टौ ।
नैनं देवा विद्रते नो मनुष्या देवाश्चैनं विदुरितरेतराश्च ॥ २२ ॥

अर्थ—आ परमात्मा विष्णु छे अने छवां लोकना सर्जनमां ब्रह्मारूप बीज छे । ए शङ्कर छे अने छतां लोकसृष्टिनुं कारण छे । एने नथी जाणता देवो के नथी जाणता मनुष्यो । अने एने अन्यान्य देवो जाणे पण छे ।

भावार्थ—एक ज परमात्मानी ब्रह्मा, विष्णु अने महेश्वर ए त्रिमूर्ति प्रसिद्ध छे, पण ते त्रिमूर्तिनी पौराणिक कल्पना अनुक्रमे रजस्, सत्त्व अने तमस् ए गुणोनी प्रधानताने आभारी छे । रजोगुणने अवलम्बी सृष्टि सरजे छे ते ब्रह्मा, सत्त्वगुणने अवलम्बी तेनुं पालन करनार ते विष्णु अने तमोगुणने अवलम्बी तेनो संहार करनार ते शङ्कर । आ रीते त्रणे मूर्तिनो जुदो जुदो कार्यप्रदेश छे । छतां कवि अहीं ए त्रिमूर्तिने अभिन्नरूपे वर्णवे छे जे पौराणिक कल्पनाथी विरुद्ध छे । कवि परमात्माने विष्णु अने शंकर कही ब्रह्मानी पेठे सृष्टिना कारण तरीके वर्णवे छे । आ विरोधनो परिहार स्पष्ट छे ते ए रीते के त्रिमूर्तिनो कार्यप्रदेश पुराणोमां भले भिन्न भिन्न कल्पायो होय छतां वस्तुतः ए त्रिमूर्ति परमात्मा ज छे अने तेथी त्रणे मूर्तिओ सृष्टिनुं कारण पण छे ।

उपर प्रमाणे विरोधाभासी सगुण वर्णन कर्या पछी कवि परमात्मानी अज्ञेयता सूचववा कहे छे के तेने देवो के मनुष्यो जाणता नथी । अने साथे ज ज्ञेयता सूचववा कहे छे के अन्यान्य देवो जाणे पण छे । परमात्माने के मूलतत्त्वने कोई जाणे छे के नहीं ए प्रश्न ऋग्वेदना समयथी चर्चातो । नासदीयसूक्तमां कहेवामां आव्युं छे के देवो[1] एने जाणता हशे । वळी ऋषि कहे छे के देवो तो

---

१ को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाऽथा को वेद यत आबभूव ॥ ६ ॥
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥ ७ ॥

पाछळथी थया । तेओ पोताना पूर्ववर्ती मूलतत्त्वने केवी रीते जाणे ? आ उत्तर आगळ जतां परमात्माना ज्ञेय-अज्ञेय स्वरूपमां परिणम्यो तेने ज कविए अहीं वर्णवेल छे ।

अस्मिन्नुदेति सविता लोकचक्षुरस्मिन्नस्तं गच्छति चांशुगर्भः ।
एषोऽजस्रं वर्तते कालचक्रमेतेनायं जीवते जीवलोकः ॥ २३ ॥

अर्थ—आ परमात्माने विषे ज सूर्य जे नेत्रनी पेठे लोकने प्रकाशदायक होवाथी लोकचक्षु कहेवाय छे ते उदय पामे छे अने ए ज परमात्मा विषे ते सूर्य पाछो अंशुगर्भ—किरणोने पोतानी अंदर गर्भनी पेठे संकेली लेतो—बनी अस्त पामे छे । ए ज परमात्मा सतत काल चक्ररूपे प्रवर्ते छे अने एना ज वडे आ जीवलोक जीवी रह्यो छे ।

भावार्थ—बृहदारण्यक (३.८.९)मां याज्ञवल्क्ये वाचक्नवी गार्गीने उत्तर आपतां कह्युं छे के—"एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ" अर्थात् सूर्य-चंद्र ए परमात्माना महिमाने लीधे ज रह्यां छे, अने नियमितपणे पोत-पोतानुं काम करे छे । आ कथननुं जाणे भाष्य करतो न होय एम कठोपनिषदमां ऋषि कहे छे के "यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति ।" (४.९) । आ ज वस्तुने सिद्धसेन अहीं पूर्वार्धमां वर्णवी परमात्मानो महिमा गाय छे । उत्तरार्धमां ते परमात्माने निरंतर फरता कालचक्ररूपे वर्णवे छे । कालकारणवादिओ समग्र विश्वना कारण तरीके काळने ज मानता । आ मतनो उल्लेख अथर्ववेदना (कांड १९, सूक्त ५३–५४) कालसूक्तमां स्पष्ट छे । कवि अहीं परमात्माने ज विश्वनुं कारण माने छे तेथी ते परमात्मा अने काळ बन्नेने अभिन्न कल्पी कहे छे के जे कालचक्र निरंतर प्रवर्तमान होवानी मान्यता छे ते कालचक्र वस्तुतः परमात्मा ज छे । काळने चक्र कहेवामां आवेल छे ते एम सूचववा के जेम चक्र सदा फर्या करे छे तेम काळ पण सदा गति कर्या करे छे । चक्रमां आराओ होय छे ते बार के छ होवानी मान्यता छे । काळने चक्र कहेवामां ए पण आशय छे के चक्रना छ के बार आराओनी पेठे काळने पण छ ऋतु अने बार महिनारूप आराओ छे । जैन परंपरामां पण कालचक्रनी कल्पना छे परंतु तेमां ऋतु के मासने स्थाने बीजी ज जातना छ अने बार विभाग कल्पी तेने आरा कहेवामां आव्या छे । ते छ के बार कालविभाग ब्रह्माना दिवस अने रातनी पौराणिक कल्पनाथी पण आगळ वधी जाय छे । चडतीनो क्रम सूचवनार छ आरा उत्स-र्पिणी अने पडतीनो क्रम सूचवनार छ आरा अवसर्पिणी कहेवाय छे । आ ऋतु-

चक्र अने मासचक्र नियमितपणे एक पण क्षण थोभ्या सिवाय फरीफरीने जाय अने आवे छे। एनी गति बराबर चक्र जेवी ज छे, तेथी काळने चक्रनी उपमा बराबर लागू पडे छे। अन्ते कवि कहे छे के समग्र जीवलोकनुं जीवन परमात्माने ज आभारी छे। कविनुं आ कथन कठना "न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन। इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ" (५.५) आ विचारनुं प्रतिबिम्ब छे।

अस्मिन् प्राणाः प्रतिबद्धाः प्रजानाम्
अस्मिन्नस्ता रथनाभाविवाराः।[1]
अस्मिन् प्रीते शीर्णमूलाः पतन्ति
प्राणाशंसाः[2] फलमिव मुक्तवृन्तम् ॥ २४ ॥

अर्थ—आ परमात्मामां ज प्रजाना प्राणो जडाएला छे। एमां ज ते प्राणो रथनी नाभिमां आरानी पेठे अर्पित थएला छे। ज्यारे ए परमात्मा प्रसन्न थाय त्यारे ज प्राणनी एषणा डींटडाथी छूटा पडेल फळनी पेठे शिथिलमूल बनी खरी पडे छे।

भावार्थ—शुक्लयजुर्वेदमां जेम मनने विषे कहेवामां आव्युं छे "यस्मिन्नृचः साम यजुंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां" (३४.५) तेम अहिं कवि परमात्माने उद्देशी कहे छे के प्रजाओना प्राणो परमात्मामां ज बद्ध छे अने ते नाभिमां आरानी पेठे गोठवायला छे। एटले के प्राणीजीवन परमात्मा साथे ज संकळायेलुं छे, तेथी जुदुं नथी। आम छतां ज्यारे परमात्मानो अनुग्रह थाय छे त्यारे ए प्राण धारण करवानी वृत्ति, एनुं मूळ अविद्या नष्ट थवाथी आपोआप सरी जाय छे। आ कथनमां विरोध भासे छे, केम के जो प्रजाप्राण परमात्मा साथे ग्रथित होय तो ते परमात्मा प्रसन्न थवाथी खरी केम पडे? पण एनो परिहार एवी रीते करवो जोइए के प्राणीओनी जिजीविषा ते अज्ञानने आभारी छे। ज्यां लगी प्राणीओ पोताने परमात्मरूप न जाणे त्यां लगी ज ते जिजीविषा टके छे अने त्यां लगी ज परमात्मामां प्राण संकळाई रहे छे। परमात्मस्वरूपनुं भान थतां ए अज्ञाननुं मूळ शिथिल थवाथी जिजीविषा आपोआप चाली जाय छे।

१ रथनाभा विचाराः – मु०।

२ °शंसाफ° – मु०।

कविमां आरा गोठवायानी उपमा वेद[1] काळथी प्रसिद्ध छे अने ते बृहदारण्यक, मुण्डक, कौषीतकी आदि उपनिषदोमां पण बहु प्रचार पामी छे[2]।

मुण्डकोपनिषद्मां 'तस्मिन् दृष्टे परापरे' (२.२.८) ए पद्यमां ज्ञानयोगनो महिमा छे ज्यारे अहिं 'अस्मिन् प्रीते' ए उत्तरार्धमां भक्तियोगनुं माहात्म्य छे, जेवी रीते 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः।' (कठ. २.२२) इत्यादिमां छे। पाकुं फळ बंधनथी छूटुं पडवानी उपमा पण बहु जूनी छे—"उर्वारुकमिव बन्धनात्" —शुक्लयजुर्वेद ३.६०। कालिदासे पण एनो उपयोग कर्यो छे।

अस्मिन्नेकशतं निहितं मस्तकानामस्मिन् सर्वा भूतयश्चेतयश्च।
महान्तमेनं पुरुषं वेद वेद्यं आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥ २५॥

अर्थ—एमां सो मस्तक रह्यां छे, एमां बधी ज संपत्तिओ अने विपत्तिओ छे। अंधकारथी पर सूर्य जेवा प्रकाशमान वर्णवाळा ए ज्ञेय महान् पुरुषने हुं जाणुं छुं।

भावार्थ—पुरुषसूक्तमां (ऋ० १०.९०.१) पुरुषनुं वर्णन करतां 'सहस्रशीर्षा' पदथी हजार मस्तकनो निर्देश छे जेनुं अनुकरण शुक्लयजुर्वेद (३१.१) तथा श्वेताश्वतर (३.१४) आदिमां छे। अहिं तो कविए पुरुषरूपे परमात्मानुं वर्णन करतां सो मस्तकनो निर्देश कर्यो छे। सो के हजार ए संख्याभेद मात्र छे, एनुं तात्पर्य तो एटलुं ज छे के लोक-पुरुष-रूप परमात्माने अनेक मुख छे, ज्यारे मनुष्य पुरुष के कोई पण प्राणी पुरुषने मात्र एक ज मुख होय छे। परमात्मानी विशेषता ए छे के तमाम प्राणीओना मुखो ए एना ज मुखो छे। शुक्लयजुर्वेदमां (२५.१३) मृत्यु अने अमरत्व बन्नेने परमात्मानी छाया तरीके वर्णववामां आव्या छे। ए ज तत्त्वने अहीं कवि जुदी रीते बहलावी कहे छे के बधी ज विभूतिओ अने विपत्तिओ लोकपुरुषरूप परमात्मामां ज छे। आवा परमात्मपुरुषनुं वर्णन 'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।' इत्यादिरूपे शुक्लयजुर्वेद (३१.१८) अने श्वेताश्वतर (३.८)मां छे। तेने ज थोडा फेरफार साथे कवि अहिं उत्तरार्धमां ग्रथित करे छे।

आखा पद्यनुं तात्पर्य परमात्मानी लोकोत्तरता सूचववानुं छे। सामान्य लौकिक पुरुष एकमुख होय छे, ज्यारे परमात्म पुरुषने अनेक मुखो होय छे। लौकिक पुरुषने संपत्ति के विपत्ति होय पण ते बधी ज नहीं, ज्यारे परमात्म पुरुषमां बधी

१ शुक्लयजुर्वेद ३४.५।

२ बृहदा० २.५.१५। मुण्डक० २.२.६। कौषी० ३.९।

३ पुरुषवे°–मु०।

संपत्ति-विपत्तिओनो समास थई जाय छे । लौकिक पुरुष अज्ञानान्धकारथी आवृत होय छे ज्यारे परमात्म पुरुष एथी पर छे ।

विद्वानज्ञश्चेतनोऽचेतनो वा स्रष्टा निरीहः स ह पुमानात्मतन्त्रः ।
क्षराकारः सततं चाक्षरात्मा विशीर्यन्ते वाचो युक्तयोऽस्मिन् ॥ २६ ॥

अर्थ – ते आत्मतन्त्र पुरुष विद्वान् छे अने अज्ञ छे, चेतन छे अने अचेतन छे, कर्ता छे अने अकर्ता छे, परिवर्तिष्णु छे अने अपरिवर्तिष्णु छे । एवा ए परमात्माने विषे बधा वाणीविलासो विरमी जाय छे ।

भावार्थ – आ पद्यमां अनेक परस्पर विरोधी विशेषणद्वन्द्वो द्वारा परमात्मानुं अनेकरूपत्व तेम ज लोकोत्तरत्व सूचव्युं छे । कवि छेवटे एवां विरोधी द्वन्द्वो द्वारा वर्णन करतां थाकतो होय तेम कहे छे के साची वात तो ए छे के कोई पण वागयुक्ति परमात्मानुं निरूपण करवा असमर्थ छे । विरोधी विशेषणो द्वारा परमात्मानुं सगुण स्वरूप वर्णवी कवि छेवटे तेना निर्गुण स्वरूप तरफ ज वळे छे ।

विशेषणगत विरोधाभासनो परिहार अपेक्षाविशेषथी थई जाय छे । अहीं परमात्मा सर्वात्मकरूपे विवक्षित होवाथी अज्ञानी-ज्ञानी, जड-चेतन, कर्ता-अकर्ता, विनश्वर-अविनश्वररूप जे कांई छे ते बधुं परमात्मस्वरूप होवाथी तेमां बधां ज विरोधी विशेषणो घटी शके । विशिष्टाद्वैतवादमां परमात्मानुं शरीर चिद्-अचिद् उभयरूप कल्पायेल छे तेथी तेमां जेम परमात्मा चित् शरीर अने अचित् शरीर कही शकाय तेम अहीं पण कही शकाय । शुद्धाद्वैतना अविपरीत परिणामवादमां जे कांई जड-चेतन जगतमां छे ते बधुं परमात्माना परिणामरूप मनाय छे एटले ते मत प्रमाणे जड के चेतन जे कांई छे ते बधुं परमात्मरूप ज छे । तेवा विचारोनी छाया आ पद्यमां छे । छतां कवि 'यतो वाचो निवर्तन्ते' ए तैत्तिरीयोपनिषद् (२.४.) ना वाक्यने अनुसरी छेवटे परमात्मानुं निर्गुण स्वरूप ज सूचवे छे ।

बुद्धिबोद्धा बोधनीयोऽन्तरात्मा बाह्यश्चायं स परात्मा दुरात्मा ।
नासावेकं ना पृथग् नाभिं नोभौ सर्वं चैतत् पशवो यं द्विषन्ति ॥२७॥

अर्थ – आ परमात्मा बुद्धिनो बोद्धा अने बुद्धिनो विषय छे । ते अंदर छे अने बाह्य छे, ए श्रेष्ठ आत्मा अने कनिष्ठ आत्मा छे, ए नथी एक के नथी अनेक, अने छतां ते उभयरूप नथी एम पण नथी । वळी ए सर्वरूप छे के जेनो पशुओ – जीवात्माओ द्वेष करे छे ।

भावार्थ – सांख्यतत्त्वज्ञानने अनुसरी आत्मा अने परमात्माने लागु पडे एवा

१ नाभितोभौ – मु० ।

जे विरोधाभासी विचारो वेद, उपनिषद् अने गीता आदिमां अनेक रीते प्रकट थयेला छे ते ज विचारोमांथी केटलाकने कविए आ पद्यमां विरोधाभासी विशेषण द्वन्द्वरूपे ग्रथित कर्या छे अने ते द्वारा परमात्मानी लोकोत्तरता सूचवी छे। सांख्य-दर्शन आत्मा-परमात्माने बुद्धि – अंतःकरणनो साक्षी मानी बुद्धिगत बोधनी छाया-वाळो कल्पी कूटस्थ छतां तेने बोद्धा कहे छे, अने साथे ज ते 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" (बृहदा० ४.५.६) इत्यादि जेवा शब्दो द्वारा आत्माने बुद्धिवृत्तिनो विषय पण कहे छे। ए विचारयुगलने कविए बोद्धा अने बोधनीय कही प्रकट करेल छे। 'तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः' (ईशा० ५), 'सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः' (मुण्ड० २.१.२) जेवा शब्दोमां जे विचार उपनिषदोए व्यक्त कर्यो छे तेने ज अहिं कवि 'अन्तरात्मा' अने 'बाह्य' शब्दथी व्यक्त करे छे। सर्वतत्त्वोमां आत्मा ज मुख्य तत्त्व होई ते पर के परम आत्मा तरीके सुविदित छे। पण कवि अहिं तेने 'दुरात्मा' पण कहे छे अने साव विरोधी बाजु मूके छे। आ परात्मा अने दुरात्मानो विरोधाभास गीताना विभूति-योग अध्याय (१०)मां स्पष्ट छे। ज्यारे कृष्ण पोताने 'सिद्धानां कपिलो मुनिः' (१०.२६), 'सर्पाणामस्मि वासुकिः' (१०.२८), 'अनन्तश्चास्मि नागानाम्' (१०.२९) एम कहे छे त्यारे ते पोतामां परात्मा अने दुरात्मापणानुं द्वन्द्व घटावी छेवटे तो लोकोत्तरत्व ज सूचवे छे। कविए अहिं ए ज मार्ग लीधो छे।

ऋग्वेदना नासदीय सूक्तमां मूलतत्त्वनुं स्वरूप बतावतां ऋषि कहे छे के नथी ते सत्, नथी असत् के नथी सदसद् आदि। तेम अहिं कवि आत्मानुं स्वरूप बतावतां तेने एक मानवो, पृथक् मानवो के उभयरूप मानवो इत्यादि विकल्पोनो निषेध करे छे अने छेवटे कहे छे के ते तो सर्वात्मक छे।

कवि आत्मानुं आवुं विरुद्ध देखातुं वर्णन करी छेवटे कहे छे के परमात्मानुं स्वरूप ज एवुं छे के जे अज्ञान अने क्लेश वासनाथी ग्रस्त एवा माणसोथी न समजाय। उलटुं तेओने एवुं स्वरूप सांभळी तेना प्रत्ये द्वेष उत्पन्न थाय छे। जीवात्माने कवि पशु शब्दथी वर्णवे छे ते ए सूचववा के वस्तुतः माणस जात पण अज्ञानपाशथी बद्ध होई पशु जेवी दीन अने पराधीन ज छे, अने तेथी ज ते पशुपति – परमात्माना स्वरूपथी भडके छे।

सर्वात्मकं सर्वगतं परीतमनादिमध्यान्तमपुण्यपापम्[1]।
बालं कुमारमजरं च वृद्धं य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २८ ॥

---

१ पुण्यपापौ – मु०।

अर्थ – सर्वरूप अने छतां सर्वमां रहेल तेम ज व्याप्त; आदि, मध्य अने अंतथी रहित; पुण्य-पापथी रहित; बाल छतां कुमार; बृद्धत्व रहित छतां वृद्ध एवा ए परमात्माने जे जाणे छे ते अमर थाय छे।

भावार्थ – अहिं पण विरोधाभासी वर्णन छे। परमात्मा सर्वव्यापक अने सर्वरूप होवाथी एवुं वर्णन वस्तुतः विरोध विनानुं ज छे। कविनुं मुख्य तात्पर्य तो ए छे के जेओ सर्वत्र परमात्मदर्शन करे छे ते ज मृत्युनी पेली पार जाय छे।

आ पद्यनुं प्रथम पाद श्वेताश्वतर (३.२१) ना 'सर्वात्मानं सर्वगतं विभूत्वात्।' ए वचननुं प्रतिबिम्ब छे। बीजा पादमां 'अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यम्' गीता (११.१९) नो तथा 'य आत्मा अपहतपाप्मा' छान्दोग्य (८.७.१) नो प्रतिध्वनि छे। त्रीजा पादमां 'त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि' (४.३) तथा 'वेदाहमेतमजरं पुराणम्' (३.२१) ए श्वेताश्वतरनो संक्षेप छे। चोथुं पाद पण श्वेताश्वतरना 'य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति' (३.१ तथा १०) वचननी अनुकृति मात्र छे।

नास्मिन् ज्ञाते ब्रह्मणि ब्रह्मचर्यं नेज्या जापः स्वस्तयो नो पवित्रम्।
नाहं नान्यो नो महाञ्चो कनीयान् निःसामान्यो जायते निर्विशेषः॥२९॥

अर्थ – आ ब्रह्म – परमात्मानुं ज्ञान थाय त्यारे ब्रह्मचर्य, यज्ञ, जप, स्वस्तिवाचन के पवित्र – दर्भ या यज्ञोपवीत – ए कशुं कर्तव्य रहेतुं नथी। पछी तो आत्मा हुं नहिं, मोटो नहिं, नानो नहिं एवो निःसामान्य अने निर्विशेष थई जाय छे।

भावार्थ – प्राचीन कालथी ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य आदि आश्रमोनी अने ते अंगेना कर्तव्यपालननी प्रथा चालती आवी छे। ब्रह्मचर्य धारण करी प्रथम आश्रममां शास्त्राध्ययन करातुं। बीजा गार्हस्थ्य आश्रममां अनेकविध यज्ञो करवानुं बंधन हतुं। त्यागाभिमुख वानप्रस्थ आश्रममां जप, स्वस्तिवाचन, तेम ज पवित्र गणाता दर्भासन आदिनो उपयोग करवानी प्रथा हती। कवि अहिं संन्यासाश्रमना ब्रह्मज्ञाननी सर्वश्रेष्ठता अने सर्वोच्च कर्तव्यता बतावता कहे छे के ज्यारे ब्रह्मज्ञान थाय छे त्यारे प्रथमना त्रणे आश्रमोना कर्तव्यो अने विधानो स्वयमेव अनुपयोगी बनी छूटी जाय छे। ब्रह्मज्ञान थया पछीनी आत्मदशा वर्णवतां कवि कहे छे के ते वखते आत्मा हुं – प्रथमपुरुष के अन्य – तृतीयपुरुष रहेतो नथी। तेम ज एनामां मोटापणा के नानापणानो भाव पण रहेतो नथी। ए सामान्य अने विशेष

१ नव्याजापः – मु०।

बन्ने प्रकारोथी पर थई जाय छे । ब्रह्मज्ञानजनित आत्मस्थितिनुं आ वर्णन निर्गुण अने द्वन्द्वातीत भूमिका सूचवे छे । ज्ञानप्रधान उपनिषदोमां अने ज्ञानयोगप्रधान गीताना वचनोमां आ ज रीते आत्मज्ञाननुं माहात्म्य वर्णवायलुं छे ।

नैनं मत्वा शोचते नाभ्युपैति नाप्याशास्ते म्रियते जायते वा ।
नास्मिँल्लोके गृह्यते नो परस्मिन् लोकातीतो वर्तते लोक एव ॥ ३० ॥

अर्थ— परमात्माने जाण्या पछी ज्ञाता नथी शोक करतो के नथी कांई प्राप्त करतो । ते आशा पण नथी सेवतो, नथी मरतो के नथी जन्म लेतो, ते आ के परलोकमां पकडातो ज नथी । ते लोकातीत थया छतां लोकमां ज वर्ते छे ।

भावार्थ— कविए अहिं जीवनमुक्त ब्रह्मज्ञानीनी दशानुं वर्णन कर्युं छे । तेवो ज्ञानी लोको वच्चे रहे छे छतां ते साधारण लोकोना शोक, हर्ष, आशा, जन्म, मरण अने ऐहिक-पारलौकिक बंधनथी पर होई लोकातीत बनी जाय छे । आवी स्थिति प्राप्त करवाना मुख्य साधन तरीके अहिं आत्मज्ञानने ज निर्देशेलुं छे । गीतामां आवा जीवनमुक्त पुरुषनी दशानुं अनेकरीते वर्णन छे । कठना 'मत्वा धीरो न शोचति' (४.४) तथा 'न जायते म्रियते वा विपश्चित्' (२.१८) ए शब्दो तो प्रस्तुत पद्यमां पुनरवतार पामेला भासे छे ।

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् ।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥ ३१ ॥

अर्थ— जेनाथी पर के अपर कांई नथी, जेनाथी कोई वधारे नानुं के वधारे मोटुं नथी, जे एकलो द्युलोकमां वृक्षनी पेठे निश्चल ऊभो छे ते पुरुषथी आ बधुं परिपूर्ण छे ।

भावार्थ— अहिं लौकिक वस्तुओथी परमात्म पुरुषनी विलक्षणता ज विरोधाभासी वर्णन द्वारा व्यक्त थई छे । ईशावास्यमां 'तद्दूरे तद्वन्तिके' (५) शब्दथी अने कठमां 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' (२.२०) तथा छान्दोग्यमां 'एष म आत्माऽन्तर्हृदयेऽणीयान् ...ज्यायान्' (३.१४.३) शब्दथी विधिमुखे जे भाव प्रतिपादित थयो छे, ते ज भाव अहिं कविए श्वेताश्वतरनुं (३.९) आखुं पद्य जेमनुं तेम लई, व्यतिरेकमुखे पूर्वार्धमां सूचव्यो छे । अंतिम पाद 'येन सर्वमिदं ततम्' (गीता ८.२२) नो प्रतिध्वनि छे.

नानाकल्पं पश्यतो जीवलोकं नित्यासक्तं व्याधयश्चाधयश्च ।
यस्मिन्नेवं सर्वतः सर्वतत्त्वे दृष्टे देवे नो पुनस्तापमेति ॥ ३२ ॥

१ नित्यासक्त°–मु० ।

अर्थ – जीवलोकनुं नानारूपे दर्शन करनारने आधिओ अने व्याधिओ सदा वळगेली रहे छे। परंतु पूर्वोक्त प्रकारे सर्व तरफ सर्वतत्त्वरूप जे देव छे तेनुं दर्शन थतां ज द्रष्टा फरी संताप नथी पामतो।

भावार्थ – अहिं कविए पहेलाना बधा पद्योमां एकंदर परमात्मानुं अद्वैतस्वरूप वर्णव्युं छे। तेथी उपनिषदो अने गीतानी पेठे द्वैत अने अद्वैतज्ञाननी फलश्रुति करतां भेदज्ञानथी संताप अने अभेदज्ञानथी संतापनो अभाव वर्णवे छे। छान्दोग्यना 'तरति शोकमात्मविद्' (७.१.३) ए टूंका वाक्यमां आत्मज्ञाननी फलश्रुति अने अर्थापत्तिथी भेदज्ञानजन्य संतापनुं सूचन छे, ते ज भावने कविए अहिं वधारे स्पष्टताथी वर्णव्यो छे।

[बहुश्रुत पं० माधवाचार्य, पं० दलसुख मालवणिया तथा श्री महेन्द्रकुमार 'अभय'नो हुं तेमना पूर्ण सहकार बदल हृदयथी आभारी छुं।]

*

शुद्धिपत्रक।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध.
३	१०	सूळ	मूळ
७	१०	·स्वास	खास
७	३६	यनो	ग्यनो
८	२	यानी	मानी
८	३०	वे	बे
८	३४	'अजन्मा'	'अज' ना
१०	४	वेदवेद्यं	वेद वेद्यं
१२	९	छे,[१]	छे,
१२	२१	वेदवेद्यं	वेद वेद्यं
१६	२१	पर्वाः।	पर्वा।
१७	१८	°भा(भ)वो	भावो
१७	३०	निःस्वसत्त्वो	निःसतत्त्वो
१९	१९	विश्वतस्पात्	विश्वतः पात्
२४	२०	वस्तुनो	वस्तुना

* *
*